गंगा-पुस्तकमाला का १३३वाँ पुष्प

लिली

(२ रंगीन चित्र)

[८ सुंदर कहानियाँ]

लेखक

श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

[परिमल, अप्सरा, अलका, महाभारत,

प्रबंध-पद्म, कुल्ली भाट आदि के लेखक]

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड,

लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द २)] सं० २००६ [सादो १।)

प्रकाशक
दुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
२. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
३. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
दुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

अर्पण

प्रियश्री श्रीदुलारेलालजी के दक्षिण
यशोवर्धन साहित्य-कर को

'लिली'

लखनऊ
१।९।१९३३

—'निराला'

भूमिका

यह कथानक-साहित्य में मेरा पहला प्रयास है। मुझसे पहले हिंदी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता, और पतन के भय से इतना न घबराता। अतः अब मेरा विश्वास केवल 'लिली' पर है, जो यथा-स्वभाव अधखिली रहकर अधिक सुगंध देती है।

सविनय

'निराला'

विषय-सूची

पद्मा और लिली

(१)

पद्मा के चंद्र-मुख पर षोडश कला की शुभ्र चंद्रिका अम्लान खिल रही है। एकांत कुंज की कली-सी प्रणय के वासंती मलय-स्पर्श से हिल उठती, विकास के लिये व्याकुल हो रही है।

पद्मा की प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर उसके पिता ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट पंडित रामेश्वरजी शुक्ल उसके उज्ज्वल भविष्य पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ किया करते हैं। योग्य वर के अभाव से उसका विवाह अब तक रोक रक्खा है। मैट्रिक-परीक्षा में पद्मा का सूबे में पहला स्थान आया था। उसे वृत्ति मिली थी। पत्नी को योग्य वर न मिलने के कारण विवाह रुका हुआ है, शुक्लजी समझा देते हैं। साल-भर से कन्या को देखकर माता भविष्य-शंका से काँप उठती हैं।

पद्मा काशी-विश्वविद्यालय के कला-विभाग में दूसरे साल की छात्रा है। गर्मियों की छुट्टी है, इलाहाबाद घर आई हुई है। अब के पद्मा का उभार, उसका रूप-रंग, उसकी चितवन-चलन-कौशल-वार्तालाप पहले से सभी बदल गए हैं। उसके हृदय में अपनी कल्पना से कोमल सौंदर्य की भावना, मस्तिष्क में लोकाचार से स्वतंत्र अपने उच्छृंखल आनुकूल्य

के विचार पैदा हो गए हैं। उसे निस्संकोच चलती-फिरती, उठती-बैठती, हँसती-बोलती देखकर माता हृदय के बोलवाले तार से कुछ और ढीली तथा बेसुरी पड़ गई हैं।

एक दिन संध्या के डूबते सूय के सुनहले प्रकाश में, निरभ्र नील आकाश के नीचे, छत पर, दो कुर्सियाँ डलवा माता और कन्या गंगा का रजत-सौंदर्य एकटक देख रही थीं। माता पद्मा की पढ़ाई, कॉलेज की छात्राओं की संख्या, बालिकाओं के होस्टल का प्रबंध आदि बातें पूछती हैं, पद्मा कहती है, हाथ में हाल की निकली स्ट्रैंड मैगज़ीन की एक प्रति। तस्वीरें देखती जाती है। हवा का एक हलका झोंका आया, खुले रेशमी बाल, सिर से साड़ी को उड़ाकर, गुदगुदाकर, चला गया।

"सिर ढक लिया करो, तुम बेहया हुई जाती हो।" माता ने रुखाई से कहा।

पद्मा ने सिर पर साड़ी की जरीदार किनारी चढ़ा ली, आँखें नीची कर किताब के पन्ने उलटने लगी।

"पद्मा!" गंभीर होकर माता ने कहा।

"जी!" चलते हुए उपन्यास की एक तस्वीर देखती हुई नम्रता से बोली।

मन से अपराध की छाप मिट गई, माता की वात्सल्य-सरिता में कुछ देर के लिये बाढ़-सी आ गई, उठते उच्छ्वास से बोलीं—"कानपुर में एक नामी वकील महेशप्रसाद त्रिपाठी हैं।"

"हूँ" एक दूसरी तस्वीर देखती हुई।

"उनका लड़का आगरा-युनिवर्सिटी से एम० ए० में इस साल फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट आया है।"

"हूँ" पद्मा ने सिर उठाया। आँखें प्रतिभा से चमक उठीं।

"तेरे पिताजी को मैंने भेजा था, वह परसों देखकर लौटे हैं। कहते थे, लड़का हीरे का टुकड़ा, गुलाब का फूल है। बातचीत दस हज़ार में पक्की हो गई है।"

"हूँ" मोटर की आवाज़ पा पद्मा उठकर छत के नीचे देखने लगी। हर्ष से हृदय में तरंगें उठने लगीं। मुस्किराहट दबाकर आप ही में हँसती हुई चुपचाप बैठ गई।

माता ने सोचा, लड़की बड़ी हो गई है, विवाह के प्रसंग से प्रसन्न हुई है। खुलकर कहा—"मैं बहुत पहले से तेरे पिताजी से कह रही थी, वह तेरी पढ़ाई के विचार में पड़े थे।"

नौकर ने आकर कहा—"राजेन बाबू मिलने आए हैं।" पद्मा की माता ने एक कुर्सी डाल देने के लिये कहा। कुर्सी डालकर नौकर राजेन बाबू को बुलाने नीचे उतर गया। तब तक दूसरा नौकर रामेश्वरजी का भेजा हुआ पद्मा की माता के पास आया, कहा—"ज़रूरी काम से कुछ देर के लिये पंडितजी जल्द बुलाते हैं।"

(२)

ज़ीने से पद्मा की माता उतर रही थीं, रास्ते में राजेंद्र से भेंट हुई। राजेंद्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पद्मा की माता ने कंधे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, और

कहा—"चलो, पद्मा छत पर है, बैठो मैं अभी आती हूँ।"

राजेंद्र जज का लड़का है, पद्मा से तीन साल बड़ा, पढ़ाई में भी।

पद्मा अपरजिता बड़ी-बड़ी आँखों की उत्सुकता से प्रतीक्षा में थी, जब से छत से उसने देखा था।

"आइए, राजेन बाबू, कुशल तो है ?" पद्मा ने राजेंद्र का उठकर स्वागत किया। एक कुर्सी की तरफ़ बैठने के लिये हाथ से इंगित कर खड़ी रही। राजेंद्र बैठ गया, पद्मा भी बैठ गई।

"राजेन, तुम उदास हो !" "तुम्हारा विवाह हो रहा है ?" राजेंद्र ने पूछा। पद्मा उठकर खड़ी हो गई। बढ़कर राजेंद्र का हाथ पकड़कर बोली—"राजेन, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं। जो प्रतिज्ञा मैंने की है, हिमालय की तरह उस पर अटल रहूँगी।"

पद्मा अपनी कुर्सी पर बैठ गई। मैगज़ीन खोल उसी तरह पन्नों में नज़र गड़ा दी। जीने से आहट मालूम दी।

माता निगरानी की निगाह से देखती हुई आ रही थीं। प्रकृति स्तब्ध थी। मन में वैसी ही अन्वेषक-चपलता।

"क्यों बेटा, तुम इस साल बी० ए० हो गए ?" हँसकर पूछा।

"जी हाँ।" सिर झुकाए हुए राजेंद्र ने उत्तर दिया।

"तुम्हारा विवाह कब तक करेंगे तुम्हारे पिताजी, जानते हो ?"

"जी नहीं।"

"तुम्हारा विचार क्या है ?"

"आप लोगों से आज्ञा लेकर बिदा होने के लिये आया हूँ, विलायत भेज रहे हैं पिताजी।" नम्रता से राजेंद्र ने कहा।

"क्या बैरिस्टर होने की इच्छा है ?" पद्मा की माता ने पूछा।

"जी हाँ।"

"तुम साहब बनकर विलायत से आना और साथ एक मेम भी लाना. मैं उसकी शुद्धि कर लूँगी।" पद्मा हँसकर बोली।

आँखें नीची किए राजेंद्र भी मुस्किराने लगा।

नौकर ने एक तश्तरी पर दो प्यालों में चाय दी—दो रकाबियों पर कुछ बिस्कुट और केक। दूसरा एक मेज उठा लाया। राजेंद्र और पद्मा की कुर्सी के बीच रख दी, एक धुली तौलिया ऊपर से बिछा दी। सासर पर प्याले तथा रकाबियों पर बिस्कुट और केक रखकर नौकर पानी लेने गया, दूसरा आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

(३)

"मैं निश्चय कर चुका हूँ, जबान भी दे चुका हूँ, अब के तुम्हारी शादी कर दूँगा।" पंडित रामेश्वरजी ने कन्या से कहा।

"लेकिन मैंने भी निश्चय कर लिया है, डिग्री प्राप्त करने से पहले विवाह न करूँगी।" सिर झुकाकर पद्मा ने जवाब दिया।

"मैं मैजिस्ट्रेट हूँ बेटी, अब तक अक़्ल ही की पहचान

करता रहा हूँ, शायद इससे ज्यादा सुनने की तुम्हें इच्छा न होगी।" गर्व से रामेश्वरजी टहलने लगे।

पद्मा के हृदय के खिले गुलाब की कुल पंखड़ियाँ हवा के एक पुरज़ोर झोंके से काँप उठीं। मुक्ताओं-सी चमकती हुई दो बूदें पलकों के पत्रों से झड़ पड़ीं। यही उसका उत्तर था।

"राजेन जब आया, तुम्हारी माता को बुलाकर मैंने जीने पर नौकर भेज दिया था, एकांत में तुम्हारी बातें सुनने के लिये।—तुम हिमालय की तरह अटल हो, मैं भी वर्तमान की तरह सत्य और दृढ़।" रामेश्वरजी ने कहा—"तुम्हें इसलिये मैंने नहीं पढ़ाया कि तुम कुल-कलंक बनो।"

"आप यह सब क्या कह रहे हैं?"

"चुप रहो। तुम्हें नहीं मालूम? तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय-घराने का लड़का है—ऐसा विवाह नहीं हो सकता।" रामेश्वरजी की साँस तेज़ चलने लगी, आँखें भौंहों से मिल गईं।

"आप नहीं समझे मेरे कहने का मतलब।" पद्मा की निगाह कुछ उठ गई।

"मैं बातों का बनाना आज दस साल से देख रहा हूँ। तू मुझे चराती है? वह बदमाश...... !"

"इतना बहुत है। आप अदालत के अफ़सर हैं! अभी-अभी आपने कहा था, अब तक अक़्ल की पहचान करते रहे हैं, यह आपकी अक़्ल की पहचान है! आप इतनी बड़ी बात राजेंद्र

को उसके सामने कह सकते हैं ? बतलाइए, हिमालय की तरह अटल सुन लिया, तो इससे आपने क्या सोचा ?"

आग लग गई, जो बहुत दिनों से पद्मा की माता के हृदय में सुलग रही थी।

"हट जा मेरी नजरों से बाहर, मैं समझ गया।" रामेश्वरजी क्रोध से काँपने लगे।

"आप ग़लती कर रहे हैं, आप मेरा मतलब नहीं समझे, मैं भी बिना पूछे हुए बतलाकर कमजोर नहीं बनना चाहती।" पद्मा जेठ की लू में झुलस रही थी, स्थल-पद्म-सा लाल चेहरा तमतमा रहा था। आँखों की दो सीपियाँ पुरस्कार की दो मुक्ताएँ लिए सगर्व चमक रही थीं।

रामेश्वरजी भ्रम में पड़ गए। चक्कर आ गया। पास की कुर्सी पर बैठ गए। सर हथेली से टेककर सोचने लगे। पद्मा उसी तरह खड़ी दीपक की निष्कंप शिखा-सी अपने प्रकाश में जल रही थी।

"क्या अर्थ है, मुझे बता।" माता ने बढ़कर पूछा।

"मतलब यह, राजेन को संदेह हुआ था, मैं विवाह कर लूँगी—यह जो पिताजी पक्का कर आए हैं, इसके लिये मैंने कहा था कि मैं हिमालय की तरह अटल हूँ, न कि यह कि मैं राजेन के साथ विवाह करूँगी। हम लोग कह चुके थे कि पढ़ाई का अंत होने पर दूसरी चिंता करेंगे।" पद्मा उसी तरह खड़ी सीधे ताकती रही।

"तू राजेन को प्यार नहीं करती ?" आँख उठाकर रामेश्वरजी ने पूछा।

"प्यार ? करती हूँ।"

"करती है ?"

"हाँ, करती हूँ।"

"बस, और क्या ?"

"पिता !—"

पद्मा की आबदार आँखों से आँसुओं के मोती टूटने लगे, जो उसके हृदय की क़ीमत थे, जिनका मूल्य समझनेवाला वहाँ कोई न था।

माता ने ठोढ़ी पर एक उँगली रख रामेश्वरजी की तरफ़ देखकर कहा—"प्यार भी करती है, मानती भी नहीं, अजीब लड़की है!"

"चुप रहो!" पद्मा की सजल आँखें भौंहों से सट गईं, "विवाह और प्यार एक बात है ? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है, तो वह उससे विवाह भी करता है ? पिताजी जज साहब को प्यार करते हैं, तो क्या इन्होंने उनसे विवाह भी कर लिया है ?"

रामेश्वरजी हँस पड़े।

(४)

रामेश्वरजी ने शंका की दृष्टि से डॉक्टर से पूछा—"क्या देखा आपने डॉक्टर साहब ?"

"बुखार बड़े ज़ोर का है, अभी तो कुछ कहा नहीं जा सकता, जिस्म की हालत अच्छी नहीं, पूछने से कोई जवाब भी नहीं देती। कल तक अच्छी थी, आज एकाएक इतने ज़ोर का बुखार, क्या सबब है ?" डॉक्टर ने प्रश्न की दृष्टि से रामेश्वर जी की तरफ़ देखा।

रामेश्वरजी पत्नी की तरफ़ देखने लगे।

डॉक्टर ने कहा—"अच्छा, मैं एक नुस्खा लिखे देता हूँ, इससे जिस्म की हालत अच्छी रहेगी। थोड़ी-सी बर्फ़ मँगा लीजिएगा। आइस-बैग तो क्यों होगा आपके यहाँ। एक नौकर मेरे साथ भेज दीजिए, मैं दे दूँगा। इस वक़्त एक सौ चार डिग्री बुखार है। बर्फ़ डालकर सिर पर रखिएगा। एक सौ एक तक आ जाय, तब ज़रूरत नहीं।"

डॉक्टर चले गए। रामेश्वरजी ने अपनी पत्नी से कहा—"यह एक दूसरा फ़साद खड़ा हुआ। न तो कुछ कहते बनता है, न करते। मैं क़ौम की भलाई चाहता था, अब ख़ुद ही नकटों का सरताज हो रहा हूँ। हम लोगों में अभी तक यह बात न थी कि ब्राह्मण की लड़की का किसी क्षत्रिय-लड़के से विवाह होता। हाँ, ऊँचे कुल की लड़कियाँ ब्राह्मणों के नीचे कुलों में गई हैं। लेकिन, यह सब आख़िर क़ौम ही में हुआ है।"

"तो क्या किया जाय ?" स्फारित, स्फुरित आँखें, पत्नी ने पूछा।

"जज साहब से ही इसकी बचत पूछूँगा। मेरी अक़्ल अब और नहीं पहुँचती।—अरे छीटा !"

"जी !" छीटा चिलम रखकर दौड़ा।

"जज साहब से मेरा नाम लेकर कहना, जल्द बुलाया है।"

"और भैया बाबू को भी बुला लाऊँ ?"

"नहीं-नहीं।" रामेश्वरजी की पत्नी ने डाँट दिया।

(५)

जज साहब पुत्र के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। इँगलैंड के मार्ग, रहन-सहन, भोजन-पान, अदब-क़ायदे का बयान कर रहे थे। इसी समय छीटा बँगले पर हाज़िर हुआ, और झुककर सलाम किया। जज साहब ने आँख उठाकर पूछा—"कैसे आए छीटाराम ?"

"हुज़ूर को सरकार ने बुलाया है, और कहा है, बहुत जल्द आने के लिये कहना।"

"क्यों ?"

"बीबी रानी बीमार हैं, डॉक्टर साहब आए थे, और हुज़ूर..." बाक़ी छीटा ने कह ही डाला था।

"और क्या ?"

"हुज़ूर..." छीटा ने हाथ जोड़ लिए। उसकी आँखें डब-डबा आईं।

जज साहब बीमारी कड़ी समझकर घबरा गए। ड्राइवर को बुलाया। छीटा चल दिया। ड्राइवर नहीं था। जज साहब ने राजेंद्र से कहा—"जाओ, मोटर ले आओ। चलें, देखें क्या बात है।"

(६)

राजेंद्र को देखकर रामेश्वरजी सूख गए। टालने को कोई बात न सूझी। कहा—"बेटा, पद्मा को बुखार आ गया है, चलो, देखो, तब तक मैं जज साहब से कुछ बातें करता हूँ।"

राजेंद्र उठ गया। पद्मा के कमरे में एक नौकर सिर पर आइस-बैग रक्खे खड़ा था। राजेंद्र को देखकर एक कुर्सी उसने पलँग के नजदीक रख दी।

"पद्मा!"

"राजेन!"

पद्मा की आँखों से टप-टप गर्म आँसू गिरने लगे। पद्मा को एकटक प्रश्न की दृष्टि से देखते हुए राजेंद्र ने रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिए।

सिर पर हाथ रक्खा, सिर जल रहा था। पूछा—"सिर-दर्द है?"

"हाँ, जैसे कोई कलेजा मसल रहा हो।"

दुलाई के भीतर से छाती पर हाथ रक्खा, बड़े जोर से धड़क रही थी।

पद्मा ने पलकें मूँद लीं, नौकर ने फिर सिर पर आइस-बैग रख दिया।

सिरहाने थरमामीटर रक्खा था। झाड़कर, बॉडी के बटन खोल राजेंद्र ने आहिस्ते से बग़ल में लगा दिया। उसका हाथ बग़ल से सटाकर पकड़े रहा। नजर कमरे की घड़ी की तरफ़ थी।

निकालकर देखा, बुख़ार एक सौ तीन डिग्री था।

अपलक चिंता की दृष्टि से देखते हुए राजेंद्र ने पूछा—"पद्मा, तुम कल तो अच्छी थीं, आज एकाएक बुखार कैसे आ गया?"

पद्मा ने राजेंद्र की तरफ़ करवट ली, कुछ न कहा।

"पद्मा, मैं अब जाता हूँ।"

ज्वर से उभरी हुई बड़ी-बड़ी आँखों ने एक बार देखा, और फिर पलकों के पर्दे में मौन हो गईं।

अब जज साहब और रामेश्वरजी भी कमरे में आ गए।

जज साहब ने पद्मा के सिर पर हाथ रखकर देखा, फिर लड़के की तरफ़ निगाह फेरकर पूछा—"क्या तुमने बुख़ार देखा है?"

"जी हाँ, देखा है।"

"कितना है?"

"एक सौ तीन डिग्री।"

"मैंने रामेश्वरजी से कह दिया है, तुम आज यहीं रहोगे। तुम्हें यहाँ से कब जाना है?—परसों न?"

"जी।"

"कल सुबह बतलाना घर आकर, पद्मा की हालत कैसी रहती है। और रामेश्वरजी, डॉक्टर की दवा करने की मेरे ख़याल से कोई ज़रूरत नहीं।"

"जैसा आप कहें।" संप्रदान-स्वर से रामेश्वरजी बोले।

"जज साहब चलने लगे। दरवाज़े तक रामेश्वरजी भी

गए। राजेंद्र वहीं रह गया। जज साहब ने पीछे फिरकर कहा—"आप घबराइए मत, आप पर समाज का भूत सवार है।" मन-ही-मन कहा—"कैसा बाप और कैसी लड़की!"

(७)

तीन साल बीत गए। पद्मा के जीवन में वैसा ही प्रभात, वैसा ही आलोक भरा हुआ है। वह रूप, गुण, विद्या और ऐश्वर्य की भरी नदी, वैसी ही अपनी पूर्णता से अदृश्य की ओर, वेग से बहती जा रही है। सौंदर्य की वह ज्योति-राशि स्नेह-शिखाओं से वैसी ही अम्लान स्थिर है। अब पद्मा एम्० ए० क्लास में पढ़ती है।

वह सभी कुछ है, पर वह रामेश्वरजी नहीं हैं। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने पद्मा को एक पत्र में लिखा था—"मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं, पर अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ़ एक बात मानकर चलो—राजेंद्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना। बस।"

इसके बाद से पद्मा के जीवन में आश्चर्यकर परिवर्तन हो गया। जीवन की धारा ही पलट गई। एक अद्भुत स्थिरता उसमें आ गई। जिस जाति के विचार ने उसके पिता को इतना दुर्बल कर दिया था, उसी जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर, पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का उसने निश्चय कर लिया।

राजेंद्र बैरिस्टर होकर विलायत से आ गया। पिता ने कहा—"बेटा, अब अपना काम देखो।" राजेंद्र ने कहा—"ज़रा और सोच लूँ, देश की परिस्थिति ठीक नहीं।"

(८)

"पद्मा !" राजेंद्र ने पद्मा को पकड़कर कहा।

पद्मा हँस दी। "तुम यहाँ कैसे राजेन ?" पूछा।

"बैरिस्टरी में जी नहीं लगता पद्मा, बड़ा नीरस व्यवसाय है, बड़ा बेदर्द। मैंने देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया है, और तुम ?"

"मैं भी लड़कियाँ पढ़ाती हूँ—तुमने विवाह तो किया होगा ?"

"हाँ, किया तो है।" हँसकर राजेंद्र ने कहा।

पद्मा के हृदय पर जैसे बिजली टूट पड़ी, जैसे तुषार की प्रहत पद्मिनी क्षण-भर में स्याह पड़ गई। होश में आ, अपने को सँभालकर कृत्रिम हँसी रँगकर पूछा—"किसके साथ किया ?"

"लिली के साथ।" उसी तरह हँसकर राजेंद्र बोला।

"लिली के साथ।" पद्मा स्वर में काँप गई।

"तुम्हीं ने तो कहा था—विलायत जाना और मेम लाना।"

पद्मा की आँखें भर आईं।

हँसकर राजेंद्र ने कहा—"यही तुम अँगरेज़ी की एम्० ए० हो ? लिली के मानी ?"

ज्योतिर्मयी

(१)

"मानती रहें, चूँकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाए हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जबरन् गुलाम बना रक्खा है; कोई चारा भी तो नहीं—कैसी बात है !" कमल की पंखड़ियों-सी उज्ज्वल बड़ी-बड़ी आँखों से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चंद्रिका, भरी हुई युवती ने कहा।

"नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है।" सहज स्वर से कहकर युवक निरीक्षक की दृष्टि से युवती को देखने लगा।

युवती मुस्किराई—तमाम चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई। सुकुमार गुलाब के दलों-से लाल-लाल होंठ ज़रा बढ़े, मर्मरोज्ज्वल मुख पर प्रसन्न-कौतुक-पूर्ण एक ज्योतिश्चक्र खोलकर यथास्थान आ गए।

"वाक्ये का दरिद्रता !" युवती मुस्किराती हुई बोली—"अच्छा बतलाइए तो, यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ?" युवती खिलखिला दी।

युवक का चेहरा उतर गया।

"आपने इस साल एम्० ए० पास किया है, और अँगरेज़ी में। वहाँ पतिव्रता स्त्रियों की शायद पत्नीव्रत पुरुषों से ज्यादा जीवनियाँ आपने याद कीं!" युवती ने वार किया।

युवक बड़े भाई की ससुराल गया था। युवती उसी की विधवा छोटी साली है।

"आपने कहाँ तक पढ़ा है?" युवक ने जानना चाहा।

"सिर्फ़ हिंदी और थोड़ी-सी संस्कृत जानती हूँ।" डब्बे को नज़दीक लेकर युवती पान लगाने लगी।

"मैं इतना ही कहता हूँ, आपके विचार समाज के तिनके के लिये आग हैं।" ताज्जुब की निगाह देखते हुए युवक ने कहा।

"लेकिन मेरे भी हृदय के मोम के पुतले को गलाकर बहा देने, मुझसे जुदा कर देने के लिये समाज आग है, साथ-साथ यह भी कहिए।" उँगली चूनादानी में, बड़ी-बड़ी आँखों की तेज़ निगाह युवक की तरफ़ फेरकर युवती ने कहा—"मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गई, जानती भी नहीं, पति कैसे थे, और विधवा हो गई!" कई बूँद आँसू कपोलों से बहकर युवती की जाँघ पर गिरे। आँचल से आँखें पोंछ लीं, फिर पान लगाने लगी।

"तंबाकू खाते हैं आप?" युवती ने पूछा।

"नहीं।" युवक के दिल में सन्नाटा था। इतनी बड़ी, इतने आश्चर्य की, इतनी ख़तरनाक बात आज तक किसी विधवा

युवती की ज़बान से उसने नहीं सुनी। वह जानता था, यह सब अख़बारों का आंदोलन है। इस तरह की कल्पना भी उसने कभी नहीं की। कारण, वह कान्यकुब्जों के एक श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ था। युवती की बातों से घबरा गया।

"लीजिए।" युवती ने कई बीड़े दिए।

"आप बुरा मत मानिएगा, मैं आपको देख रही थी कि आप कितने दर्दमंद हैं!" युवती ने साधारण आवाज़ में कहा।

युवक ने पान ले लिए, पर लिए ही बैठा रहा। "खाइए," युवती ने कहा—"आपसे एक बात पूछूँ?"

"पूछिए।"

"अगर आपसे कोई विधवा-विवाह करने के लिये कहे?" युवती मुस्किराई।

"मैं नहीं जानता, यह तो पिताजी के हाथ की बात है।" युवक झेंप गया।

"अगर पिताजी की जगह आप ही अपने मुख़्तारआम होते?"

संकुचित होकर, फिर हिम्मत बाँधकर युवक ने कहा—"मुझे विधवा-विवाह करते हुए लाज लगती है।"

युवती, मनोभावों को दबाकर, छलछलाई आँखों चुप रही। एक बार उसी तरह युवक को देखा, फिर मस्तक झुका लिया।

दूसरे दिन युवक घर चलने लगा। मकान की जेठी स्त्रियों

के पैर छुए। इधर-उधर आँखें युवती की तलाश करती रहीं। वह न मिली। युवक दोमंज़िले से नीचे उतरा। देखा, दरवाज़े के पास खड़ी वह उसी की राह देख रही है। युवक ने कहा—"आज्ञा दीजिए, अब जा रहा हूँ।" हाथ जोड़कर युवती ने प्रणाम किया। एक पत्र युवक को देकर कहा—"जल्द दर्शन दीजिएगा।" युवक के हृदय में एक अज्ञात प्रसन्नता की लहर उठी। उसने देखा, नील पलकों के पंखों से युवती की आँखें अप्सराओं-सी आकाश की ओर उड़ जाना चाहती हैं, जहाँ स्नेह के कल्प-वसंत में मदन और रति नित्य मिले हैं, जहाँ किसी भी प्रकार की निष्ठुर शृंखला नवोन्मेष को झुका नहीं सकती, जहाँ प्रेम ही आँखों में मनोहर चित्र, कंठ में मधुर संगीत, हृदय में सत्यनिष्ठ भावना और रूप में ख़ूबसूरत आग है।

युवक ने स्नेह के मधुर कंठ से, सहानुभूति की ध्वनि में, कहा—"ज्योती!"

युवती निस्संकोच कुछ क़दम आगे बढ़ गई। युवक के बिलकुल नज़दीक, एक तरह सटकर, खड़ी हो गई। सिर युवक की ठोढ़ी के पास, आँखें आँखों में मिली हुई। वक्ष के स्पर्श से शिराओं में एक ऐसी तरंग बह चली, जिसका अनुभव आज तक उनमें किसी को न हुआ था। अंगों से आनंद के परमाणु निकलते रहे। आँखों में नशा छा गया।

"फिर कहूँगा।" युवक लजाकर चल दिया। "याद

रखिएगा—आपसे इतनी ही कर-बद्ध प्रार्थना......" युवक दृष्टि से ओझल हो गया।

(२)

"पिघलकर पत्थर भी उस पत्र को पढ़ने पर बह जाता है वीरेन!" विजय ने सहानुभूति के शब्दों में वीरेंद्र से कहा।

"दिल के तुम इतने कमज़ोर हो? नष्ट होते हुए एक समाज-क्लिष्ट जीवन का उद्धार तुम नहीं कर सकते विजय? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का सीधा-सधा एक लद्दू बैल करने के लिये हुई है?" वीरेंद्र ने चिंत्य भर्त्सना के शब्दों में कहा।

"पिताजी से कुछ बस नहीं वीरेन, उनके प्रतिकूल कोई आचरण मैं न कर सकूँगा। पर आजीवन—आजीवन मैं सोचूँगा कि दुर्बल समाज की सरिता से एक बहते हुए निष्पाप पुष्प का मैं उद्धार नहीं कर सका, ख़ास तौर से इसलिये कि मुझे उसने तैरना नहीं सिखलाया।"

"तुम्हें एक दूसरी सामाजिक शिक्षा से तैरना मालूम हो चुका है।"

"हाँ, हो चुका है, पर केवल तैरते रहना, फिर किनारे पर लगना नहीं; सब घाट हमारे समाज द्वारा अधिकृत हैं, और केवल तैरते रहना मनुष्य के लिये असंभव है।"

"तुम कूल पर आ सकते हो।"

"पर उस फूल को लेकर नहीं, तब समाज के किसी भी

घाट पर नहीं जा सकता, और केवल कूल इतना बीहड़ है कि मेरे थके हुए पैर वहाँ जम नहीं सकते, वहाँ दृष्टियों का ताप इतना प्रखर है कि वह फूल मुरझा जायगा, मैं भी झुलस जाऊँगा।"

"तो सारांश यह कि तुम उस पावन-मूर्ति अबला का, जिसने तुम्हें बढ़कर प्यार किया—मित्र समझकर गुप्त हृदय की व्यथा प्रकट कर दी, उस देवी का समाज के पंक से उद्धार नहीं कर सकते।"

"देखो, मेरा हृदय अवश्य उसने छीन लिया है; पर शरीर पिताजी का है, वीरेन, मैं यहाँ दुर्बल हूँ।"

"कैसी वाहियात बात! कितनी बड़ी आत्मप्रवंचना है यह! विजय, हृदय शरीर से अलग भी है? जिसने तुम पर क्षण-मात्र में विजय प्राप्त कर ली, उसने तुम्हारे शरीर को भी जीत लिया है। अब उसका तिरस्कार परोक्ष अपना ही है। समाज का धर्म तो उसके लिये भी था—क्या फूटे हुए बरतन की तरह वह भी समाज में एक तरफ़ निकालकर न रख दी जाती? क्या उसने यह सब नहीं सोच लिया?"

"उसमें और-और तरह की भी भावनाएँ होंगी।"

"और-और तरह की भावनाएँ उसमें होतीं, तो वह तुम्हारे भाई की ससुरालवालों के सगर्व मुखों पर अच्छी तरह स्याही पोतकर अब तक कहीं चली गई होती, समझे? वह समझ-दार है। और, तुम्हारे सामने जो इतना खुली है, इसका

कारण काम नहीं, यथार्थ ही तुम्हें उसने प्यार किया है। अच्छा, उसका पता तो बताओ।"

वीरेंद्र ने नोटबुक निकालकर पता लिख लिया। फिर विजय से कहा—"तुम मेरे मित्र हो, वह मेरे मित्र की प्रेयसी है!"

दोनो एक दूसरे को देखकर हँसने लगे।

(३)

इस घटना को कई महीने बीत चुके। अब भाई की ससुराल जाने की कल्पना-मात्र से विजय का कलेजा काँप उठता, संकोच की सर्दी तमाम अंगों को जकड़ लेती, संकल्प से उसे निरस्त हो जाना पड़ता है। उसकी यह हालत देख-देखकर वीरेंद्र मन-ही-मन पश्चात्ताप करता, पर तब से फिर किसी प्रकार की इच्छा का दबाव उस पर उसने नहीं डाला। विजय इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में रिसर्च-स्कॉलर है। वीरेंद्र बी० ए० पास कर लेने के पश्चात् वहीं अपना कारोबार देखने में रहता है। वह इटावे के प्रसिद्ध रईस नागरमल-भीखमदास-फर्म के मालिक मंसाराम अग्रवाल का इकलौता लड़का है।

महीने के लगभग हुआ, वीरेंद्र इटावे चला गया है। चलते समय विजय से बिदा होकर गया था।

इधर भी, तीन-चार दिन हुए, घर से पत्र द्वारा विजय को बुलावा आया है। ज़िला उन्नाव, मौज़ा बीघापुर विजय की जन्म-भूमि है।

उसके पिता अच्छी साधारण स्थिति के मनुष्य हैं, मँझ-

गाँव के मिश्र, कुलीन कान्यकुब्ज। विवाह अधिक दहेज के लोभ से उन्होंने रोक रक्खा था। अब तक जितने संबंध आए थे, तीन हज़ार से अधिक कोई नहीं दे रहा था। अब के एक संबंध आया हुआ है, उसकी तरफ़ विजय के पिता का विशेष झुकाव है। ये लोग मुरादाबाद के बाशिंदे हैं। पंद्रह दिन पहले ही विजय की जन्म-पत्रिका ले गए थे। विवाह बनता है, इसलिये दोबारा पक्का कर लेने को कन्या-पक्ष से कोई आया हुआ है। विजय के पिता और चचा मकान के भीतर आपस में सलाह करते हैं।

"दादा, लेकिन एक पै तो है, ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं, ऐसा फिर न हो कि कहीं के भी न रहें।"

"तुम भी; मारो गोली; हमको रुपए से मतलब; हमारे पास रुपया है, तो भाई-बंद, ज्ञात-बिरादरीवाले सब साले आवेंगे; नहीं तो कोई लोटे-भर पानी को न पूछेगा।"

"तो क्या राय है?"

"विवाह करो, और क्या?"

"सात हज़ार से आगे नहीं बढ़ता।"

"घर घेरे बैठा है, देखते नहीं? धीरे-धीरे दुहो; लेकिन शिकार निकल न जाय।"

"अब फँसा है, तो क्या निकलेगा।"

"डर कौन—बारात में घर के चार जन चले चलेंगे। कहेंगे दूर है, ख़र्चा नहीं मिला।"

"वही ख़र्चा यहाँ करके खिला दिया जाय—है न?"

"ठीक है।"

"बस, यही ठीक है।"

विजय के पिता पं० गंगाधर मिश्र और चचा पं० कृष्ण-शंकर रक्त-चंदन का टीका लगाए, रुद्राक्ष की माला पहने, खड़ाऊँ खटपटाते दरवाजे-चौपाल में, नेवाड़ के पलंग पर, धीर-गंभीर मुद्रा से, सिर झुकाए हुए, आकर बैठ गए। एक मूँज की चारपाई पर कन्या-पक्ष के पं० सत्यनारायण शर्मा मिर्जई पहने, पगड़ी बाँधे बैठे हुए थे। मिश्रजी को देखकर पूछा—"तो क्या आज्ञा देते हैं मिश्रजी?"

पंडित गंगाधर ने पं० कृष्णशंकर की ओर इशारा करके कहा—"बातचीत इनसे पक्की कीजिए। मकान-मालिक तो यह हैं।"

पं० सत्यनारायणजी ने पं० कृष्णशंकर की ओर देखा।

"बात यह है पंडितजी कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रुपया तो लड़के की पढ़ाई में ही लग चुका है। लखनऊ के वाजपेयी आए थे, हमारा उनका संबंध भी है, छ हजार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको खर्च भी पूरा न मिला, तो लड़के को पढ़ाकर हमने फ़ायदा क्या उठाया? इस संबंध में (इधर-उधर झाँककर) हमें कुछ मिला भी नहीं, तो इतना गिरकर...।"

"अच्छा, तो कहिए, क्या चाहते हैं आप।"

"पंद्रह हजार।"

"तब तो हमारे यहाँ बरतन भी साबित न रहेंगे।"

"अच्छा, तो आप कहिए।"

"नौ हज़ार लीजिए।"

"अच्छा, बारह हज़ार में पक्का।"

पं० सत्यनारायण अपनी अधारी सँभालने लगे।

"ग्यारह हज़ार देते हैं आप ?" पं० कृष्णशंकर ने उभड़कर पूछा।

"दस हज़ार सही, बताइए।"

"अच्छा पक्का ; मगर पाँच हज़ार पेशगी।"

पं० सत्यनारायण ने काग़ज़, स्टांप और हज़ार-हज़ार के पाँच नोट निकालकर कहा—"लीजिए, आप दोनो इसमें दस्तख़त कीजिए। पहले लिखिए, पं० सत्यनारायण, मुरादाबाद, की कन्या से श्रीयुत विजयकुमार मिश्र एम्० ए० के विवाह-संबंध में, जो दस हज़ार में मय गवहीं और गौने के ख़र्च के पक्का हुआ है, कन्या के पिता से पाँच हज़ार पेशगी नक़द वसूल पाया, फिर स्टांप पर वल्दियत के साथ दस्तख़त कीजिए।"

पंडित गंगाधर गद्‌गद हो गए। लिखा-पढ़ी हो गई। विवाह का दिन स्थिर हो गया।

तिलक चढ़ गया। तिलक के पहले समय तक विजय को ज्योतिर्मयी की याद आती रही। पर नवीन विवाह के प्रसंग से मन बट गया। फिर धीरे-धीरे, जैसा हुआ करता है, वह

स्मृति भी चित्त के अतल-स्पर्श को चली गई। अब विजय को उसके चरित्र पर रह-रहकर शंका होने लगी है। सोचता है, बुरा फँस गया था, बच गया। सच कहा है—"स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?"

अब नई कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में उठने लगी हैं। एक अज्ञात, अपरिचित सुख को जैसे केवल कल्पना के बल से प्रत्यक्ष कर लेना चाहता है, और इस चेष्टा में सुख भी कितना। इतना कभी उसे नहीं मिला। इस अज्ञात रहस्य में वह ज्योतिर्मयी की अम्लान छवि एक प्रकार भूल ही गया।

(४)

विजय ने विवाह के उत्सव में मिलने के लिये वीरेंद्र को लिखा था; पर उसने उत्तर दिया कि "मैं तो विजय का ही मित्र हूँ, किसी पराजय का नहीं ; इस विवाह में मैं शरीक न हो सकूँगा।"

जैसा पहले से निश्चय था, जल्दबाज़ी का बहाना कर पं० गंगाधर ने जाने-जाने रिश्तेदारों को छोड़कर और किसी को न बुलाया। इसी कारण ज्योतिर्मयी के यहाँ निमंत्रण न पहुँच सका। इधर भी जहाँ कहीं न्योता गया, वहाँ से कुछ ही लोग आए। कारण, संदेह की हवा बह चुकी थी !

बारात चली। लखनऊ में वीरेंद्र से विजय की मुलाक़ात हुई। वीरेंद्र ने पूछा—"यार, तुम तो ज्योतिर्मयी को भूल ही गए, इतने गल गए इस विवाह में !"

"बात यह कि इस तरह की स्त्रियाँ समाज के काम की नहीं होतीं।"

"अरे, तुमने तो स्वर भी बदल दिया !"

"क्या किया जाय ?"

"और जहाँ विवाह करने जा रहे हो, वहाँ बड़ी सती-सावित्री निकलेगी, इसका क्या प्रमाण मिला है ?"

"क्वाँरी और विधवा में फ़र्क़ है भाई ?"

"यह मानता हूँ।"

"कुछ संस्कृति का भी खयाल रखना चाहिए। संस्कृति से ही संतति अच्छी होती है।"

"अरे, तुम तो पूरे पंडित हो गए !"

"अपने कुल का सबको खयाल रहता है—केवहु काल कराल परै, पै मराल न ताकहिं तुच्छ तलैया।"

"अच्छा !"

"जी हाँ।"

"तब तो, जी चाहता है, तुम्हारे साथ मैं भी चलूँ।"

"चलो, मैंने तो तुम्हें लिखा भी था, पर तुम दुनिया की वास्तविकता का विचार तो करते नहीं, विचारों की दीवारें उठाया-गिराया करते हो।"

"अच्छा भई, अब वास्तविकता का आनंद भी ले लें। कहो, कितने गिनाए ?"

"दस हजार।"

"दस हज़ार ! उसके मकान में लोटा तो मज़बूत न छोड़ा होगा ?"

"कान्यकुब्ज-कुलीन हैं ?"

"वे कोई मामूली कान्यकुब्ज होंगे ?"

"बहुत मामूली नहीं, १७ बिस्वे मर्यादवाले हैं ।"

"हूँ ।" वीरेंद्र सोचने लगा । "तुमसे घृणा हो गई है । जाओ, अब नहीं जाऊँगा । तुम इतने नीच हो !"

वीरेंद्र शहर की ओर चला गया । बारात मुरादाबाद चली ।

(५)

विवाह हो गया । पं० सत्यनारायण शर्मा ने वर-यात्रियों का हृदय से स्वागत-सम्मान किया । खोरे में पाँच हज़ार नक़द दिए, और कन्या को पाँच हज़ार का ज़ेवर ऊपर से बनवा दिया । विजय को सोने की चेन, जेब-घड़ी, रिस्ट-वाच, साइकिल, अँगूठी और कुछ और सामान देकर ख़ुश किया ।

बड़ा-छोटा 'बड़हार' हो गया । चतुर्थी के बाद कन्या के साथ बारात बिदा हुई ।

वर-कन्या के लिये पं० सत्यनारायणजी ने एक सेकंड-क्लास कंपार्टमेंट पहले से रिज़र्व्ड करा रक्खा था, और लोगों के लिये इंटर-क्लास अलग ।

पं० सत्यनारायण हाथ जोड़कर पं० गंगाधर और कृष्ण-शंकर आदि से बिदा हुए । कन्या से कहा—"बेटी, वहाँ पहुँचकर अपने समाचार जल्द देना ।" गाड़ी छूट गई ।

प्रणय से विजय का चित्त चपल हो उठा। अब तक जिस अदेख मुख पर असंख्यों कल्पनाएँ उसने की हैं, उसे देखने को यह-कितना शुभ, सुंदर अवसर मिला। उसने पिता को, ससुर को, समाज को भरे आनंद के छलकते हृदय से बार-बार धन्यवाद दिया। साथ युवती बहू का घूँघट उठा चंद्रमुख को देखने की चकोर-लालसा प्रबल हो उठी। डाकगाड़ी पूरी रफ़्तार से जा रही है।

विजय उठकर बहू के पास चलकर बैठा। सर्वांग काँप उठा। घूँघट हटाने के लिये हाथ उठाया। कलाई काँपने लगी। उस कंपन में कितना आनंद है! रोएँ-रोएँ के भीतर से आनंद की गंगा बह चली।

विजय ने बहू का घूँघट उठाया, त्रस्त होकर चीख उठा—"एं!—तुम हो?"

"विवाह का यही सुख है!" ज्योतिर्मयी की आँखों से घृणा मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रही थी। "छिः! मैंने यह क्या किया! यह वही विजय—संयत, शांत वही विजय है? ओह! कैसा परिवर्तन! इसके साथ अब अपराधी की तरह, सिकुड़कर, घर के एक कोने में मुझे संपूर्ण जीवन पार करना होगा। इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्र-गुण अच्छा था! वहाँ कितनी मधुर-मधुर कल्पनाओं में पल रही थी! वीरेंद्र! तुम्हारे-जैसा सिंह-पुरुष ऐसे स्यार का भी साथ करता है? तुमने इधर डेढ़ महीने से मेरे लिये कितना

दु:ख, कितना कष्ट, मुझे और अपने इस अधम मित्र को सुखी करने के विचार से स्वीकार किया! १८ हज़ार ख़र्च किए! तुम्हारे मैनेजर—सत्यनारायण—मेरे कल्पित पिता—वह देवताओं का निर्मल परिवार।" ज्योतिर्मयी मन-ही-मन और कितना, न-जाने क्या-क्या, सोच रही थी।

विजय ने पूछा—"तुम वहाँ कैसे गईं?"

"वीरेंद्र से पूछना।" ज्योतिर्मयी ने कहा।

(६)

ज्योतिर्मयी मिश्र-ख़ानदान में मिल गई है। पर वीरेंद्र फिर विजय से नहीं मिला।

कमला

(१)

कमला सोलहवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खिली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।

गत वर्ष कमला का पाणि-ग्रहण-संस्कार हो चुका है। पर मकान की प्रथा के अनुसार बारात के साथ वह बिदा नहीं हुई। अभी पति केवल ध्यान का विषय है, ज्ञान का नहीं। अभी सिर्फ़ सुनती, सोचती और मन-ही-मन प्यार करती है।

कमला के पति पंडित रमाशंकर वाजपेयी आज दोपहर के समय आए हुए हैं। टेढ़ा के रहनेवाले, भाई के जनेऊ में कुछ दिनों के लिये बिदा करा ले जायँगे। पिता ने भेजा है।

पंडित रमाशंकर के आने की ख़बर गाँव-भर की युवतियों में तेज़ी से फैल गई। कमला की सहेलियाँ उसके घर महफ़िल जमाने के विचार से चलीं। माता बहाने से दूसरे के घर चली गई। हँसी-मज़ाक़, दिल्लगी गूँजने लगी। वाजपेयीजी ज़नान-ख़ाने में ही आराम कर रहे हैं। दिन का पिछला पहर, तीन का समय है। सखियाँ पान लगाकर देती, बुझौवल-कहानियों के

लटके कहती, अर्थ पूछती हैं। वाजपेयीजी अर्थ जानते हैं या नहीं, नहीं मालूम; जवाब नहीं देते; न झेंपकर झेंपते हैं। "कहाँ तक पढ़े हैं आप?" "कुछ तिरिया-चरित्तर भी सीखा है?" "आपकी बहन का नाम?" उत्तर की प्रतीक्षा के बिना प्रश्न होते रहे। वाजपेयीजी के क्षुद्र घट में एक साथ इतना आदि-रस नहीं अट सका। जी उकताने लगा। उधर, वाजपेयीजी का वैसा भरा-पूरा मुँह देखकर रस का सागर उमड़ता गया। छिपने के इरादे उठकर वह बाहर की तरफ़ चले, तो कमला से कुछ छोटी रिश्ते की उसकी एक बहन ने फुर्ती से हाथ पकड़कर कहा—"लो, मेरे पान तो अभी आपने खाए ही नहीं; मैं आपकी बहन लगती हूँ (खुलकर हँसी)। देखिए, दीदी और आप एक हैं। दीदी की मा आपकी मा हैं, तो दीदी की बहन?" "आपकी बहन हुई" तीन-चार सहेलियाँ हँसती हुई एक साथ कह उठीं। वाजपेयीजी ने पान ले लिए, लजाए हुए बाहर चले गए।

(२)

कमला रामपुर रहती है, छोटा भाई उन्नाव अँगरेज़ी स्कूल में पढ़ता है। पिता का देहांत हो गया है। पिता पंडित रामेश्वर-जी त्रिपाठी, अहमदाबाद में कपड़े की दूकान करते थे। इसी से कुछ धन एकत्र कर लिया था। कमला कभी-कभी माता के साथ अहमदाबाद जाया करती थी। शिक्षा हिंदी की मिलती थी। पर मराठी और गुजराती बालिकाओं में रहने के कारण उन

भाषाओं पर भी कुछ दखल पा गई है। तीनो भाषाएँ पढ़ लेती, तीनो में पत्र लिख लेती है। पिता की मृत्यु के बाद उसका विवाह हुआ। माता ने अच्छा घर, पढ़ा-लिखा वर देखकर विवाह किया। दहेज में तीन हजार रुपए दिए। कमला के पति पंडित रमाशंकर अँगरेजी के एम्० ए० हैं। इसी साल परीक्षा दी है, अभी फल नहीं निकला।

कमला के पड़ोस में कई घर उसके खानदान के हैं। मकान के मालिक पंडित शिवरामजी से कमला के पिता की न बनती थी। इसका एक कारण था। कमला की माता ग़रीब कान्य-कुब्ज की लड़की थी। बीस साल तक अविवाहिता बैठी रही। पिता का देहांत हो चुका था। माता के पास इतना धन न था कि लड़की की शादी बराबरवाले घर में कर देतीं। कमला के पिता कल्याण-भार्य थे। विना दहेज लिए उन्होंने कन्या की माता को ऋण-मुक्त किया। यह बात उनके खानदान के आद-मियों को अच्छी न लगी। इसका एक दूसरा कारण था। कमला के ननिहालवाले भैयाचार कमला की नानी को ग़रीबी के कारण छोड़े हुए थे कि खान-पान रखने से लड़की की शादी करानी पड़ेगी। अलग होने के कारण भी उन लोगों ने गढ़ लिए थे, जिनमें कमला की नानी और कुमारी माता के चाल-चलन में फ़र्क़ मुख्य था। यह सुनकर कमला के पिता-पक्ष के भैया-चार विवाह के समय से अब तक कमला की माता से कोई तअल्लुक़ नहीं रखते। कमला के विवाह के समय भी नहीं

गए। विवाह हो जाने पर वाजपेयीजी से शिकायत करने की ताक लगाए बैठे थे। सोचा था, कमला का जीवन बरबाद कर देंगे।

(३)

रात एक पहर बीत चुकी। पंडित रमाशंकर भोजन कर चुके। ऊपर के कोठे पर पलंग बिछा दिया गया था, वहीं लेटे हुए हैं। कमला की माता और कमला का भी भोजन हो चुका।

कमला को अनेक प्रकार की सीख दे, पान और पानी लेकर पति की पद-सेवा के लिये भेजकर, ईश्वर-स्मरण करती हुई माता नीचे अपनी चारपाई पर लेट रहीं।

कमला के मन में माता की शिक्षा, मस्तिष्क में पति-सेवा, आँखों में एकनिष्ठ अचल ज्योति, होठों पर लाज से मधुर मंद मुसकान—कपोलों तक चक्राकृति फैलती हुई, आत्मा में मृदु प्रणय-भय, पदों में भूषणों का विजय-शिंजन। जीने की एक-एक कली पर पैर रखती, रति की मधुर झंकृति रमाशंकर के भीतर एक-एक कमल खिला देती है।

आकाश के चाँद का फूल पृथ्वी पर ज्योतिर्मय परिमल भर रहा है। कोठे के झरोखों से किरणें, अदृश्य अप्सराओं-सी, दो सुहृदों को प्राथमिक प्रणय के दृढ़ पाश में बँधते हुए देखकर हँसती हुई चली जाती हैं। हवा नीम के फूलों की भीनी महक से दोनो को मौन स्नेह में ढककर बह रही है।

हृदय के रत्नाकर ने आज ही विष्णु को लक्ष्मी दी, लक्ष्मी को विष्णु।

कमला ने जल-भरा ढक्कनदार लोटा और गिलास रख दिया। डिब्बे से निकालकर रमाशंकर को पान दिए। पलकें झुकाए पलंग के एक ओर खड़ी रही। जहाँ कमला का यथार्थ स्थान था—रमाशंकर का स्नेहमय प्रदेश—वहाँ से उस प्रांत में जहाँ रमाशंकर कमला की स्मृति में चमक रहा था, प्रति-ध्वनि हुई—"बैठो।" स्वप्न-संचलित कमला पैरों की तरफ़ बैठ गई, दबाने के लिये अपनी तरफ़वाला दाहना पैर पकड़ लिया, दबाने लगी। झरोखे से चाँद सीधे मुख पर पड़ रहा था, तमाम पलंग चाँदनी से जगमग।

कमला पैर दबा रही है, रमाशंकर एकटक उस अर्द्ध स्फुट कली की नवल मुख-कांति पान कर रहा है। प्रति शिरा एक नए जीवन से मजबूत, उसे अपनी ही दृढ़ता से स्खलित कर दूर, बहुत दूर, सौंदर्य के उस अपरिचित लोक में पतंग की तरह उड़ा ले गई। आज तक के बंद अनेक रहस्य-द्वार उस किरण-मयी के सौंदर्य के जादू से गुलशब्बो की तरह खुल-खुल गए। उसी के प्रकाश से पथ देखता हुआ वह वहाँ-वहाँ हो आया।

कमला को थकी हुई जान यथासमय रमाशंकर उठकर बैठ गया। बड़े स्नेह से हाथ पकड़ चाँद की तरफ़ बैठा लिया। पैर लटकाए, मुक्त-ज्योत्स्ना-कलित अकल आकाश देखते हुए, एक दूसरे का हाथ लिए दोनो चुपचाप बैठे रहे। खुले हुए हृदय ने

कमला का संकोच दूर कर दिया। प्रणय का मौन स्पर्श दोनो के हृदय को पुलकित करता रहा। भाषा आप बंद हो गई, जैसे शक्ति की चंचलता हो।

मौन स्थिति में रहने की अनिच्छा या परिवर्तन ने दोनो को सृष्टि की चपलता—वाक्य-कलाप, केलियों में उभाड़ दिया।

अनेक बातें हुईं, अनेक विशृंखल परिणय-प्रसंग छिड़े, रमाशंकर की उतनी बड़ी विद्वत्ता ने कमला को वार्तालाप की बराबर जगह दी, और निस्संकोच कमला उसके समान ही वाकपटु रही!

वह रात दोनो को जागते, तरह-तरह गपशप लड़ाते हुए कटी। वह जागरण की रात्रि भविष्य के जीवन की चिर-स्मरण-रात्रि बन गई। चिड़ियों की चहक सुनकर दोनो ने देखा, रात पार हो रही है।

कमला के हृदय में रमाशंकर का कहा हुआ एक वाक्य हमेशा के लिये रह गया—"तुम्हारे बिना मेरे जीवन का अर्थ ही क्या?"

(४)

उसी रोज़ दिन में क़रीब ग्यारह बजे एक नाई रमाशंकर के पास खबर लेकर पहुँचा। एकांत में बुलाकर कहा—"चुप-चाप चले चलिए। मालिक ने कहा है, बिदा कराने की ज़रूरत नहीं, और इसी दम बुला भेजा है।"

रमाशंकर के होश उड़ गए, कुछ देर सोचकर पूछा—"इसका कोई कारण भी है ?"

"हाँ, बिदा कराने पर भैयाचार और नातेदार छोड़ देंगे। बहुत बड़ी बात है। घर चलकर मालूम कीजिए।"

रमाशंकर एक पेड़ की तरफ़ कुछ क़दम बढ़ गया, कहा—"तुमको जो कुछ मालूम हो, कहो।"

नाई ने मुँह बनाकर कहा—"भैया, अब घर में सब समझ लीजिएगा। बड़े घरों की बात कौन कहे ?"

रमाशंकर का दिल बैठ गया, फिर अदम्य आग्रह से भर गया। उसने कहा—"हम कहते हैं, संकोच छोड़कर कहो।"

नाई लाचार, ज़मीन पर नज़र गड़ाए कहने लगा—"कल यहाँ के कुछ लोग, इन्हीं के भैयाचार, गाँव गए थे। जगनू बापू, रामकिशोर चाचा, भगवानदीन दादा वग़ैरह (ये सब रमाशंकर के भैयाचार हैं, जो जुदा रहते हैं) को अलग बुलाकर कहा है कि लड़की काम की नहीं है। कानपुर में किसी मुसलमान..."

रमाशंकर क्षोभ से काँपने लगा। कमला पर क्रोध आ गया।

नाई कहता गया—"अब भैयाचार, नातेदार, सबको मालूम हो गया है। सबकी राय है कि आप चले चलें, फिर जैसा होगा, किया जायगा। आपकी सास का चाल-चलन अच्छा नहीं, न मायके में अच्छा रहा। सब भैयाचार छोड़े हुए हैं।"

रमाशंकर सोचता रहा। विषय कोई न था, केवल चिंता

और क्रोध था, जिसका अर्थ था कि स्त्री-जाति कैसी छल से भरी होती है !

प्यार रमाशंकर को बहुत दूर ले गया था। अब हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे थे, पर प्रमाण की उसे ज़रूरत न थी। प्यार प्रमाण नहीं चाहता।

रमाशंकर मकान गया, चुपचाप अपना छोटा संदूक़ उठाकर चल दिया। उसकी सास उस समय कार्य से बाहर थी।

कमला खड़ी थी। भोली दृष्टि से देखती रही। रमाशंकर सिर झुकाए हुए चला गया।

(५)

विना विदा कराए रमाशंकर का चला जाना सखियों तथा गाँव के लोगों में कमला तथा उसकी माता का बहुत बड़ा अपमान हुआ। सखियाँ कमला के आँसू पोंछतीं, उसे ढाढ़स देती थीं। कुछ दिनों में उसके भैयाचारों की स्त्रियों से उन्हें हाल मालूम हो गया, और उसकी माता भी समाचार पा गई।

कमला कारण सुनकर सूख गई। यह बात बिलकुल झूठ थी। कानपुर में वह अपनी मौसी के यहाँ थी, उसी समय एक रात वहाँ चोरी हुई थी, जिसका अर्थ भैयाचारों ने अपनी तरफ़ से इतना बढ़ा लिया था और विवाह हो जाने के बाद यह जौहर खोलने का इरादा किए बैठे थे। कमला की माता की दशा थोड़े ही दिनों में शोचनीय हो गई ; कमला भी हवा में डोलने-सी लगी।

गर्मी की छुट्टी हुई। कमला का भाई राजकिशोर घर आया। बालक घर की दशा देखकर बहुत घबराया। गाँव के लोग उसे साथ ले वाजपेयीजी के यहाँ चलने लगे। कमला ने रोक दिया। माता को सोचते-सोचते और फ़ाक़े करते-करते कमज़ोरी से बुख़ार आ गया। क्रमशः कफ से फेफड़े जकड़ गए, हालत चिंता-जनक हो गई।

एक दिन बालक राजकिशोर ने गाँव में चर्चा सुनी, और उदास होकर माता के पास जाकर कहा—"अम्मा, वाजपेयी जीजा का दूसरा विवाह हो रहा है। रामअधीन चाचा आज बातचीत करते थे। कोई डिप्टी-कलट्टर फ़तेहपुर के हैं, उनकी लड़की के साथ।" कमला खड़ी थी।

माता ने सुना, आँखों में आँसुओं की धारा बँध गई। बोलने की रही-सही क्षीण शक्ति भी जाती रही। उसी सजल दृष्टि से कमला को पड़ी हुई देखती रहीं।

कमला भी इस ग्रीष्म में मरु-निर्झरी-सी अल्प-जल हो रही है! माता की दशा देखकर, सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ फेरने लगी, बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे।

यह कष्ट माता से न सहा गया, उसी रात उनका देहांत हो गया। गाँव के अपर लोगों की मदद से लाश गंगा पहुँचाई गई। राजकिशोर ने दाह किया।

(६)

विवाह के लिये रमाशंकर की इच्छा न थी। उसकी चोट

ताजी थी। हृदय बैठ गया था। कमला को वह इतना प्यार कर चुका था कि अब विवाह की तरफ़ से बिलकुल वीतराग हो रहा था। मन उड़ा फिरता था। हृदय में जगह न थी, था दर्द, जहाँ उसे केवल कष्ट मिलता था। गाँव में कोई और उसका साथी भी न था, सिर्फ़ बग़ीचे थे।

डिप्टी-कलक्टर के छोटे भाई वर की तलाश में आए थे। लड़का बहुत पसंद आया। विवाह पक्का कर गए। रमाशंकर ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली।

एक रात की बात है। रमाशंकर सो रहा था। स्वप्न में देखा, कमला बग़ल में खड़ी है, आँखों से आँसू जारी हैं। उठकर बैठ गया। वह मूर्ति उसकी दृष्टि में लीन हो गई।

(७)

कमला की मौसी खबर पाकर आई, उसे अपने पास कानपुर ले गई। कुल क्रिया हो चुकी थी। राजकिशोर उन्नाव से सार्टीफ़िकट लेकर कानपुर में भर्ती हो गया।

दिन, सप्ताह, मास, क्रम-क्रम से, जीवन की पूर्ति के रूप से, एकमात्र भाई के स्नेह में, बीतने लगे। कमला का चित्त भी पूर्व-स्थिति के विस्तार को संकुचित करता हुआ अपनी ही हद में आ गया! दुःख का वह रूप नैराश्य के तम में लीन हो अब केवल सुप्ति की तरह जीवन की शांति में प्रवर्तित हो गया है। अब उसे कोई इच्छा नहीं, उसके प्राणों में कोई रंग

नहीं ; है केवल तपस्या, जिस पर एक हिंदू-महिला विश्वास की डोर पकड़े हुए अपना कुल जीवन निछावर कर देती है।

पति के प्रति कमला का काम ही क्रोध उभाड़ सकता था, मोह में बदलकर जीवन को कलंकित कर सकता था, पर अब उसका निशान तक न रहा। वह अपनी कुल-प्रथा के अनुसार एक सौभाग्यवती की तरह व्रत-उपवास आदि तथा देवताओं को प्रणाम कर पति तथा भाई की कल्याण-कामना किया करती है। शृंगार में केवल सेंदुर उसे तृप्त कर रखने के लिये है।

एक सीने की मशीन उसने खरीद ली है। रूमाल, क़मीज़, कुर्ते आदि सीती, कभी कपड़ों पर छापे लगाकर बेल-बूटे काढ़ती है। इसी तरह उसके अवकाश का समय पार होता है। उसकी मौसी माल बाज़ार में बेचवा देती। दूकानदार बिक जाने पर दाम दे देते हैं।

कमला जहाँ रहती है, वहीं एक बग़ल में आर्य-समाज के मंत्रीजी रहते हैं, और एक तरफ़ 'महिला'-पत्रिका की संपादिका।

एक रोज़ मंत्रीजी की कुमारी कन्या उससे आकर मिली, अपनी घरेलू सभ्यता के अनुसार थोड़े सामान और भरे-पूरे हृदय से कमला ने उसका स्वागत किया। बातचीत होने लगी।

"तुम बहुत दिनों से यहाँ रहती हो, कल मैंने सुना।" मंत्रीजी की लड़की वेदवती ने कहा।

"हाँ, मौसीजी के साथ कुछ महीने हुए आई हूँ।" कमला ने नम्र स्वर से कहा।

"तुम्हारा विवाह तो हो गया है?" माँग का सेंदुर देखती हुई वेदवती ने पूछा।

"हाँ।" कमला ने सरल चितवन नीची कर कहा।

"तुम अपने पतिदेव के यहाँ कितने दिनों से नहीं गईं?"

"जब से विवाह हुआ।" उसी सरलता से कमला ने कहा।

"क्यों, क्या अभी तुम्हारा गौना नहीं हुआ?"

"न।" कमला चुपचाप बैठी रही।

तब तक कमला की मौसी भी आ गई, और पड़ोस की उसे प्रतिष्ठित घर की कन्या जानकर एक साँस में कमला के प्रति हुए पाशविक अत्याचार का वर्णन कर गई।

सुनकर ग़ुस्से से वेदवती का चेहरा लाल पड़ गया—"तुम लोग कमज़ोर हो। क़िस्मत को कोसती हो। मैं होती, तो चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती—उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन्, मेरे शौहर से मुलाक़ात कर जाइए। तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रक्खा है।"

कमला अपलक ताकती रही। वेदवती उठकर बाहर की ओर "अभी आती हूँ" कहकर चली गई। 'महिला' की संपा-

दिका कुमारी सुशीलादेवी को साथ लिवा लाई—"यह हैं। देखो, पतिदेव के पिताजी ने विना अपराध परित्याग कर दिया। चिरंजीव पुत्र की दूसरी शादी कर दी।" परिचय दिया।

सुशीला बैठ गई। वेदवती खड़ी रही।

"तुम्हारी बातें एक नोट के रूप में 'महिला' में दे दूँ?" सुशीला ने राय ली।

"नहीं।"

"ये सब बुरे संस्कार हैं, बहन, इन्हें दूर करने की कोशिश ही हमारा धर्म होना चाहिए।"

"पर ये मेरी तरफ़ के बुरे संस्कार नहीं, लिखने के लिये कहने पर साक्षी बनकर मेरी तरफ़ के ठहरेंगे। मैं ऐसा नहीं चाहती।"

"पर मेरा धर्म भी एक है।"

"उसके लिये मुझसे आप राय क्यों लेती हैं? अगर आप लिखेंगी, तो आपसे मेरा विनय-स्नेह उठ जायगा। क्योंकि आप मेरे संबंध में मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ कार्रवाई करेंगी।"

सुशीला एकटक देखती रही। वेदवती भी स्थिर खड़ी सुनती रही। कमला अपने ही विचारों की लय में मौन बैठी और दृढ़ होती रही।

"अच्छा, फिर मिलूँगी, मुझे पाठशाला जाना है।" कहकर वेदवती चली, साथ-साथ सुशीला भी ग़ौर करती हुई चली गई।

(८)

दो साल और पार हो गए। कमला के स्वास्थ्य में पुनः भादों की बाढ़ है। भरी-पूरी परंतु समय की तमिस्र तिथि के भीतर, सधी हुई चाल से, ठीक अपने ही समुद्र की ओर बहती जा रही है।

राजकिशोर के स्नेह की कमला महिलाओं में सर्वत्र चरित्र-बल, आदर्श-प्रीति के कारण सम्मान तथा प्यार की पात्री बन रही है। स्त्रियाँ उसे देवी के भाव से, मन-ही-मन अपना आदर्श मानकर, पूजती हैं।

राजकिशोर अब सोलहवें साल का तरुण, प्रवेशिका-परीक्षा का कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी है। सोलहवें साल में ही वह फूटकर जवान हो गया है। रोज कसरत करता, जोर करने के लिये अखाड़े जाया करता है। कमला का बाहरी लक्ष्य है भाई और भीतरी पति-धर्म।

प्रातः स्नान करती है, कुछ देर रामायण-पाठ, फिर अपने कार्य में लगती है। रमाशंकर अब उसके लिये कोई बाहर का मनुष्य नहीं, वह अब उसकी आत्मा में अर्थमय बनकर है। इसलिये अब कामना-जन्य प्रेम का खिंचाव उसके चित्त को हिला नहीं सकता। वह अब सब समय अकाम तपस्या-सी जीवन के कूल पर खड़ी अपने ही रमा-रूप के शंकर-शुभंकर निस्सीम सुंदर को तन्मय देख रही है।

इसी समय कानपुर में हिंदू-मुसलमानों में दंगे की बुनियाद

पड़ी। एक रोज बड़ा हंगामा भी हुआ। दोनो तरफ़ के अनेक घर लुटे, फुँके और ढहा दिए गए। हजारों आदमी काम आए। जो हिंदू मुसलमानों की बस्ती में थे, उनके घर फूँककर, माल लूटकर, आदमियों को मारकर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों में डाल लिया। ऐसा ही हिंदुओं ने भी किया। अपने मसरफ़ में न आने लायक़ जानकर उन्होंने मुसलमानों की महिलाओं का भी वध कर डाला।

दोनो जातियों के लोग अपने-अपने दलों के भूले-भटके, ग़ायब-शुदा लोगों की तलाश में लग गए। उसी समय एक मुसलमान के घर से दो हिंदू-युवतियाँ बरामद हुईं। राजकिशोर हिंदू-दल में था। निस्सहाय जान अपने घर में जाँच होने तक जगह देने को राजी हो गया, और कमला के पास लिवा लाया।

उन्हें नहला, वस्त्र दे, जल-पान करा कमला ने परिचय पूछा। दोनो भले घर की स्त्रियाँ जान पड़ती हैं, बहुत ही दहशत खाई हुई। एक ब्याही हुई घर की बहू-सी है, दूसरी क्वाँरी। युवती सत्रह साल की, बालिका पंद्रह साल की है।

बालिका बोली—"यह मेरी बहूजी हैं। मेरे भाई रमाशंकर वाजपेयी यहीं काटन-मिल के बाबू हैं। मेरे पिता का नाम रामचंद्र वाजपेयी है। भैया का पता नहीं है। पिताजी घर में थे, पर हम लोगों से नहीं मिले। कुछ मुसलमान घर लूटकर हमें अपने साथ ले गए थे।"

कमला चकित हो गई। बड़ी देर तक सोचती रही। फिर राजकिशोर को अलग बुला, सब हाल समझाकर अस्पतालों में पता लगाने के लिये कहा। फिर युवतियों के भोजन पकाने का इंतज़ाम करने लगी। मौसी गाँव गई थीं।

पंडित रामचंद्र और रमाशंकर अस्पतालों में मिले। दोनो के सिर पर चोटें थीं। रमाशंकर डेरे जाते समय घायल हुए थे। ४-५ दिन बाद अच्छे हो गए। राजकिशोर स्वयंसेवक की हैसियत से देख आता था, पर अपना परिचय नहीं दिया। युवतियाँ कमला के यहाँ प्रसन्न रहती रहीं। उनका पूरा परिचय तो कमला ने प्राप्त कर लिया, पर अपना पूर्णतः छिपा रक्खा।

पिता-पुत्रों के लिये ४-५ दिनों तक भोजन कमला घर से ही भेज देती थी। उन्हें हाल मिल चुका था कि उनकी बहू और कन्या सुरक्षित हैं। पाँचवें दिन अच्छे होकर वे कमला के घर आए। साथ राजकिशोर भी था।

रमाशंकर तथा उनके पिता से वह सब हाल जिस तरह उनकी महिलाएँ एक मुसलमान के घर से निकाली गई थीं, राजकिशोर ने कहा। वाजपेयीजी ने प्रत्युत्तर में उसका निवास-स्थल पूछा। राजकिशोर ने रायबरेली-ज़िले के धई मुक़ाम के पास बतलाया।

मकान आ, अपनी महिलाओं को लेकर बिदा होते हुए पंडित रामचंद्रजी बार-बार हाथ जोड़कर बालक राजकिशोर

से प्रार्थना करने लगे—"आपने हमारा पूरा-पूरा उद्धार किया है। अब इतनी कृपा और कीजिए कि इस मामले का भेद कहीं खुलने न पावे, नहीं तो हम किसी तरफ़ के न रहेंगे।" रमाशंकर की भी पिता के शब्दों से सहानुभूति थी।

राजकिशोर पृथ्वी की तरफ़ देख रहा था। आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपक रही थीं। कुछ सँभलकर कहा—"नहीं वाजपेयीजी, आप निश्चिंत रहिए। जैसी हमारी इज्ज़त, वैसी ही आपकी है।"

(६)

पं० रामचंद्रजी घर गए, तो देखते हैं, उनके जाने से पहले गाँव-भर में उनकी बहू और बेटी की मुसलमान के घर रहनेवाली खबर फैल चुकी है। घर में उन्हीं के सगे भाई ने कहा कि घर में अभी आपका रहना नहीं हो सकता, क्योंकि आपके पीछे हम बेधरम तो हो नहीं सकते, हमारे भी छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनके भी जनेऊ और ब्याह हमें करने हैं, सब लोग हमें छोड़ देंगे, तो हम सिर्फ़ आपको लेकर करेंगे क्या?—आप तब तक ढोरवाले घर में रहिए, हम भैयाचारों को बुला लाते हैं।

पं० रामचंद्र और रमाशंकर बड़े घबराए, पर उपाय न था। ढोरवाले घर में गए। शाम को भैयाचारों का जमाव हुआ। सबने राय दी कि "तुम लोग गधे बन गए हो, अब

लाख धोने पर घोड़े नहीं बन सकते। इसलिये अब अपना परिवार लेकर अलग रहो।"

लाचार होकर पं० रामचंद्रजी को अलग होना पड़ा। गाँव में जहाँ उनके प्रबल प्रताप से सभी वर्ण काँपते थे, जिसके मकान में वह पानी पी लेते थे, वह अपने को कृतार्थ, इंद्र-तुल्य समझता था, उन्हीं वाजपेयीजी के लिये किसी शूद्र का पानी छू लेना दुश्वार हो गया।

इतने अपमान से वह गाँव में न रह सके। अपने पुत्र तथा परिवार के साथ पुनः कानपुर चले गए। दंगे के कारण बहुत दिनों तक व्यवसाय बंद रहा।

लड़की जवान हो चुकी थी, और भैयाचार छोड़ चुके थे। पता लगाकर विवाह करनेवाले कनवजिए फँस नहीं सकते, इस विचार से एक दिन राजकिशोर के यहाँ गए। बातचीत से मालूम हुआ, वह अभी कुँवारा है, और गोपाल का तिवारी, उनसे कुछ ही हेठा पड़ता है। पर ऐसे विवाह दोषवाले नहीं कहलाते। यह सोचकर वाजपेयीजी ने राजकिशोर से उसके अभिभावक को पूछा। राजकिशोर ने पूछने का कारण पूछा। वाजपेयीजी ने कहा—"तुम्हारा विवाह अपनी लड़की से करना चाहते हैं, रमा कहता है कि बहन को उन्होंने बचाया है, अब उन्हीं से उसका विवाह कर देना ठीक होगा।"

राजकिशोर ने कहा—"विवाह की बातचीत मेरे अभिभावक पक्की कर लेंगे, आपको दिक़्क़त न होगी, पर आप रमाशंकरजी

को लेकर कल आइए, मैं अपने अभिभावक से भी कह रक्खूँगा।"

दूसरे दिन पं० रामचंद्र तथा रमाशंकर आए। कमला अनावृत-मुख मंद-पद सामने आकर खड़ी हो गई।

रमाशंकर ने पिता से कहा—"यह तो पं० शिवरामजी की लड़की है!"

कमला ने कहा—"आपकी इच्छा होगी, तो ऐसी स्थिति में मैं विवाह करने को तैयार हूँ, क्योंकि आपको उठा लेना मेरा धर्म है।"

श्यामा

(१)

पंडित रामप्रसादजी पहलेपहल सरकारी अँगरेजी स्कूल में हिंदी के शिक्षक थे, अब स्थानीय सरकारी कर्मचारी भक्तों के यहाँ रामायण पढ़ते हैं। थोड़ी वैद्यक भी इन्हीं की सिफ़ारिश से ज़मींदार और तअल्लुक़ेदारों में चला ली है। जब इस तरह आमदनी ज़्यादा हो चली, सम्मान बढ़ गया, और अवकाश उठती धूप से पेड़ की छाँह की तरह घटने लगा, तब एक दिन शिक्षकवाले सापेक्ष पद के डंठल को पके फल की तरह परित्याग कर दिया।

जिन दिनों स्कूल में पढ़ाते थे, बँगला-उपन्यासों के अनुवाद हिंदी की पड़ती ज़मीन पर, ढाक के झाड़ों की तरह, अविश्राम उग-उगकर छा रहे थे। पति-भक्ति से ओत-प्रोत इन उपन्यासों के प्रति समुदाय का आज से सौ गुण अधिक समादर था। ऐसे-ऐसे उपन्यास, ख़ास तौर से बंकिमचंद्र के, पं० रामप्रसादजी पुस्तकालयों से इसलिये ले आते थे कि उन्हीं दिनों आठ सौ रुपए में एक अट्ठारह साल की युवती कन्या मोल लेकर उन्होंने नया विवाह किया था—उसे सुनाते थे।

उन्हीं दिनों बँगला-उपन्यासों की बाढ़ से हिंदी की नई संतानों के नाम-करण में भी युगांतर आ गया था। रामदास, शिवप्रसाद, कालीचरण आदि नामों की पौराणिक पराधीनता बल खाते हुए बंगालियों के वासंतिक बालों से दबकर दम तोड़ रही थी, और 'शिशिर', 'विनोद', 'प्रदीप', 'प्रमोद' आदि स्वतंत्र-पत्रों की तरह वास्तव-साहित्य की डालों पर, घर-घर, उग चले थे। बालिकाएँ लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और यमुना आदि की मंद रूढ़ियों से छुट-छुटकर आशा और लता आदि से ललित, लचीली होकर, साहित्य के विटप में लिपट रही थीं। यह लालच, भगवान् ही जाने क्यों, पं० रामप्रसादजी भी नहीं छोड़ सके। विवाह के साल ही-भर में उत्पन्न हुए लड़के का नाम बंकिमचंद्र रक्खा। पर, बड़ा होकर, गाँव जाकर, वहाँवालों के स्वाधीन उच्चारण में, एक ही रोज़ में, वंकिम बाँके बन गया।

पं० रामप्रसादजी बाक़ायदा कर्मचारी भक्त-वृंदों के यहाँ रामायण-पाठ करते हैं, कभी यहाँ, कभी वहाँ। अपनी उदात्त व्याख्याओं द्वारा यह विश्वास उन्होंने उनमें जमा दिया है कि रामायण के वर्णन में आया हुआ विह्वावलपुर ही आजकल की वलायत है। वहाँ जानेवालों के राक्षसभाव, भोजनपान तथा संग-संसर्ग आदि दोषों के कारण, चूँकि प्रबल हो जाते हैं, इसलिये करुणा-निधान महाराज श्रीरघुनाथजी उन्हें अपने चरणारविंदों में स्थान नहीं देते। ऐसे कई और भी

महत्त्व-पूर्ण अन्वेषण उन्होंने रामायण से किए हैं। वे भक्तगण व्यर्थ के लिये रामायण न सुनते थे। वे पाप करनेवाले थे, तरने की आशा रखते थे। वे सब सरकारी नौकर थे, तनख़्वाह सौ से सिर्फ़ तीन-चार सौ तक पानेवाले; पर रिश्वत से, धर्म की आम सड़क से उतरकर, अदालत या अपने ऑफ़िस की गली और कूचे में, महीने में हज़ारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अधिकांश ऐसे थे, जो पाप पूरा कर चुके थे, अब, पेंशन लेकर, प्रायश्चित्त कर रहे थे। उन्हीं में से किन्हीं-किन्हीं के सुपुत्र वलायत भी गए थे; पर चूँकि वलायत न जाने पर ही पिता ने पापों के हिसाबवाला काफ़ी मोटा खाता तैयार कर लिया था, इसलिये पुत्र के वर्तमान और भविष्य पापों के निश्चय पर उन्हें रत्ती-भर भी शंका न होती थी, पुनश्च उन्होंने किसी निष्काम साधना के लिये पुत्र को वलायत तो भेजा न था। अतः, पंडितजी को कसौटी पर खरा पाकर, नाराज़ होने के बदले सभय प्रसन्न होते थे।

उधर ऐसी व्याख्या करनेवाले पं० रामप्रसादजी, इधर, पुत्र को, बड़ा होने पर, अँगरेज़ी स्कूल पढ़ने के लिये भेजने लगे। वंकिम ने भी दसवें तक पहुँचकर, नाम के अनुसार, वाम-मार्ग ग्रहण किया। अर्थात् सिगरेट से शुरू कर अंडे-कबाब के प्रवेशिका-द्वार पर पैर रक्खा। उधर फ़ेल हुआ, इधर पास। माता एक साल पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं। एक बहन थी सरला, पिता ने नवें साल उसे भी ससुराल भेज

दिया था। यदि उच्च कुल होता, तो अब तक वंकिम भी एक बच्चे का बाप हो चुका होता।

वंकिम के आचरणों का पहले पिता को पता न था। जब हुआ, तब बदनामी से डरकर उसे घर भेज दिया।

घर में ताला लगा रहता था। बरसात से कुछ पहले जाकर पं० रामप्रसादजी मरम्मत करवा आते थे। बग़ल ही एक दूर के भैयाचार रहते हैं। वंकिम को रोटी खिला दिया करते हैं। पं० रामप्रसादजी का एक बाग़ गाँव में है, कभी-कभी उसका चारा इन्हें मिल जाता है। हिसाब से फ़ायदा रहता है।

आम पकने लगे हैं। शीघ्र पं० रामप्रसादजी भी आम खाने के लिये आनेवाले हैं।

गाँव की हँसती हुई बाहरी प्रकृति से तो वंकिम को बड़ा प्रेम है, पर रूढ़ियों पर चलती हुई लोगों की भीतरी प्रकृति से तद्रूप घृणा। वहाँ का जीवन जैसे मशीन के चाकों की तरह दूसरे ताप से चल रहा हो, स्वयं लौह-खंड की तरह निर्जीव, निष्पंद। इसलिये वहाँ उसका हृदय नहीं मिलता, सभी के लिये हृदय से वह विदेशी बन गया है।

(२)

आषाढ़ का महीना, एक सप्ताह बीत चुका है। बादलों के टुकड़े आकाश में क्रीड़ा करते हुए इधर से उधर दौड़ रहे हैं। पलकों को हलकी कर, कभी पूरब से पश्चिम, कभी पश्चिम से पूरब को, ठंडी-ठंडी हवा बह रही है। किसान आमों की अच्छी

फ़स्ल होने से सुखी हैं। सभी के मुरझे कपोलों पर हँसी खेलती है। दो-एक दौंगरे गिर चुके हैं। हल चल रहे हैं। कहीं-कहीं जुवार, अरहर, तिली, बाजरे आदि बोए जा चुके हैं, कहीं बोए जा रहे हैं। छोटे-छोटे कपास के पौदे किसी-किसी खेत में उग रहे हैं। ईख लहरा रही है—उठाई मेड़ें बारिश से कहीं-कहीं छट गई हैं। देहात बरसात के आगम से प्राणों में सुख-स्पंद पाकर प्रसन्न है। बाग़ों में हरी-हरी घास के मख़मली ग़लीचों पर गाँव के ग़रीब बच्चे छुई-छुअल, गुलहड़, गिल्ली-डंडा खेलते, अखाड़े गोड़कर कूदते, कुश्ती लड़ते हुए अपने-अपने आमों की रखवाली कर रहे हैं। सुबह से एक पहर दिन तक गाँव के प्रायः सभी बाल-वृद्ध-युवक, किसानों की स्त्रियाँ, आम लेने, पेड़ हिलाने के लिये बागों में ही एकत्र चहल-पहल करते हुए मिलते हैं।

इन्हीं के बीच, अपने बाग़ में, आज वंकिम भी बैठा हुआ है। पिता के शासन से घबराकर, अपने भविष्य-पट पर, अपटु चित्रकार की तरह, पूर्णच्छवि को खींचने को काँपती, पराङ्मुख तूलिका मानसिक शक्ति से फेरता जा रहा है। उसे इस काम में बड़ी देर हो गई, पर कोई पूरी तस्वीर उसके भविष्य-साफल्य-सी सामने न आई। जैसे तट-ज्ञान से शून्य, बीच समुद्र में पड़ा हुआ युवक, दिग्यंत्र के बिना नाव को इतस्ततः खेता रहता है, इस प्रकार केवल काल्पनिक श्रम वह कर रहा है। उसके घर के लोग बाग़ से आम बीनकर घर चले गए, धीरे-धीरे और-और लोग

भी रात के गिरे आम बीनकर, पकते पेड़ों को हिलाकर, हिस्से लगाकर, अपना हिस्सा लेकर पड़ोसियों, हिस्सेदारों के साथ चले गए, वंकिम बैठा सोचता रहा।

मधुर-मधुर हवा के झोंके से चेतना आने पर पलकें खुलीं, तो देखता है, आकाश और पृथ्वी की सजल श्यामलाभा के भीतर, वर्षा की ही नवयौवना स्वस्थ श्याम प्रतिमा-सी, एक युवती-बालिका, धीरे-धीरे, असंकुचित, मुस्किराती हुई, उसकी तरफ़ आ रही है। वंकिम प्रतीक्षा करने लगा, मन में खोजकर देखा, वह उसे पहचानता नहीं—आवाज़ आई। बालिका वंकिम के बिलकुल पास आ गई, और निस्संकोच वैसे ही बोली—"तुम कहो, तो इधर के गिरे हुए आम बिन लूँ।"

उसके चेहरे की ओर देखकर, उसे ग़रीब किसान की लड़की जानकर वंकिम ने कहा—"बिन लो।"

बालिका धीरे-धीरे चल दी।

चार क़दम चली थी कि 'ए—' पुकारकर वंकिम ने पूछा—"तेरा नाम क्या है?"

वंकिम की इस बेवक़ूफ़ी पर शहर के अहमक़ों की हेकड़ी-वाली सुनी कुछ बातें एक साथ उसे याद आ गईं; मन-ही-मन हँसकर, वंकिम को क्षमा कर बोली—"मेरे घर के सामने से तो रोज़ आते हो, मेरे बाप को नहीं जानते क्या?" कहकर द्रुत लाज के पग एक पकते पेड़ के नीचे जा आम बीनने लगी।

वंकिम को उसका यह वाक्य पूरा रहस्यवाद जँचा। उसका

पिता कौन है, उसका घर कौन-सा हो सकता है, जो कई घर गली से होकर निकलते हुए पड़ते हैं, उनमें; यह कुछ वंकिम की समझ में न आया। जो कुछ वह समझ सका, वह बालिका की ही खुली बात का मर्म, उसका निर्भय व्यवहार, उसका अनुपम स्वास्थ्य था। शहर में अनेक पढ़ी-लिखी, विचारों में बढ़ी हुई बालिकाएँ उसने देखी थीं। पर इतना आकर्षण उसे उनमें नहीं मिला। इसके चपल लावण्य में वह न समझ सका कि लुभानेवाला, मन को बलात् वशीभूत कर लेनेवाला कौन-सा जादू था। बैठा एकटक उसे देखने लगा। बालिका घूम-घूमकर अच्छे-अच्छे पेड़ों के आम उठाती रही, गति में वह बिलकुल नहीं भटकती, जैसे अच्छे आमवाले पेड़ पहले से पहचानती हो।

देखते हुए वंकिम को स्वभावतः उसके पिता को जानने के बहाने बातचीत करने का कौतूहल हुआ। वह उठकर उसकी ओर चला। बालिका का आँचल आमों से भर चुका था।

"तुम्हारे बाप का क्या नाम है?" पास जाकर अज्ञ की तरह तअज्जुब से पूछा।

बेवक़ूफ़ समझकर वह फिर मुस्किराई। "क्यों?" खिलकर बोली—"मेरे बाप का नाम सुधुआ है।" कहकर चलने को हुई, तो वंकिम ने सहृदय अज्ञ की तरह फिर पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?" हँसकर, आप ही अपने में हवा की तरह लिपटकर बालिका बोली—"मैं अपना नाम नहीं कहती।" द्रुत

फिर खाई की ओर चल दी। वंकिम खड़ा देखता रहा, वह खाई पार कर गाँव को चली गई।

(३)

सुबह को दूसरे दिन बाग़ जाते समय द्वार पर ही सुधुआ वंकिम को मिला। पालागन कर आमों के लिये बार-बार विनय-पूर्ण प्रशंसा करने लगा कि बड़े मीठे आम कल उसके बाग़ के उसने खाए, ईश्वर करे जल्द उसका विवाह हो, घर वहू आए। सिलसिले में यह भी उसने कहा कि अब के तंग-दस्त रहने के कारण वह आम मोल नहीं ले सका, नहीं तो वंकिम के बाग़ की बग़ल में हो शक्लों के 'हजारे' में वह कई साल तक एक रुपए का हिस्सा लेता रहा है।

इतनी बात के बाद उससे कुछ बातचीत करना वंकिम का फ़र्ज़ हो गया। उसने पूछा कि इस साल वह तंगदस्त क्यों हो गया, और इससे छुटकारा पाने को वह कुछ कर रहा है या नहीं।

किसान अपने दुःख की बात बड़े करुण साहित्यिक ढंग से कहते हैं, यदि कोई सहृदय श्रोता मिल जाय। सुधुआ खड़ा था। वंकिम को बैठने के लिये चारपाई डालकर एक बग़ल ज़मीन पर बैठ गया।

हथेली से अपना सिर पकड़कर, कुछ खाँसकर, सँभलकर बोला—"महाराज, आठ रुपए बीघे के हिसाब से जिमीदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिए थे। मैंने कई साल

तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी, जब खेत कुछ देने लगे, तब पर साल इन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पाँच रुपए माँगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिए। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय? फिर उन्हीं जिमींदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी। उन्होंने पाँच रुपए बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिलकुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें, तो महाजन उधार नहीं देता। भूखों मरा नहीं जाता। खेती में साढ़े बारह का पूरोपूर डाँड़ पड़ गया। कुछ न हुआ। एक बैल था, साझे में जोत लेते थे, वह भी मरा, इधर स्यामा की अम्मा थी, वह भी भगवान के यहाँ गई। परमात्मा ने सब तरफ से बैठा दिया। अफसोस-अफसोस मुझको भी दमा हो गया है। काम होता नहीं। उस किस्त किसी तरह पाँच रुपया चुकाया था। अब के कुछ भी डौल नहीं। बरखा आ गई। छप्पर वैसा ही रक्खा है। कहाँ से पैसे आवें, जो छा जाय! मिहनत-मजूरी का बल नहीं है। स्यामा दूसरों की पिसौनी करती है, तब दो रोटी तीसरे पहर तक मिलती हैं।"

बूढ़े सुधुआ को जोर की खाँसी आ गई। घर के भीतर चक्की चल रही थी। जब सुधुआ सँभला, तब बंकिम उठकर खड़ा हो गया। ऐसी स्थिति में वह क्या कर सकता है, उसकी समझ में न आया। सुधुआ भी केवल करुणा प्राप्त करने के सिवा उससे दूसरी मदद न चाहता था। वह भी जानता था,

यह अभी ख़ुद अपने मुख़्तार नहीं हैं। इसी समझ और सहानुभूति के भीतर वंकिम ने आज भी आम ले जाने के लिये श्यामा को भेज देने को सुधुआ से कहा। विनय-पूर्वक सुधुआ ने स्वीकार कर लिया। कहा, अभी पीसती है, उठेगी, तो भेज दूँगा।

वंकिम बाग़ चला गया। वहाँ से दूसरे-दूसरे बाग़ों में टहलता हुआ लड़कों से पूछ-पूछकर अच्छे-अच्छे पेड़ों के आम खाने लगा। निगाह अपने बाग़ की तरफ़ रक्खी।

बड़ी देर हो गई। दूसरे बाग़ों से वह अपने बाग़ में आ गया। उसके भैयाचार घर के लड़के आम बीनकर बाग़ से चले गए। और-और लोग भी धीरे-धीरे जाने लगे। क्रमशः बाग़ ख़ाली हो गए। वंकिम बैठा श्यामा की राह देखता रहा। पर वह न आई।

एक-एक बार गाँव के रास्ते की तरफ़ देखकर, अंत में हताश होकर वंकिम ख़ुद अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने को चला। तुख़्मी सुफ़ेदे का एक पेड़ ख़ूब पक रहा था। चढ़कर एक डाल हिलाई। उतरकर आम बीन लिए। एक डाल तुख़्मी दसहरी की हिलाई। कुछ शरबती के आम गिराए, कुछ शहाबादी के। धोती का छोर फैलाकर सब बाँध लिए। उसके ले जाने-भर को हलका ख़ासा बोझ हो गया। धोती चोपी से भर गई। कुर्ते में भी दाग़ लगे। पर इसकी चिंता न की। कंधे पर रखकर ले चला। एक साधारण लोध किसान को इस तरह एक ब्राह्मण का आम ले

जाकर देना कहाँ तक ठीक है, उसने कभी नहीं सोचा। उसे इस तरह ढोकर आम देते हुए देखकर लोग क्या सोचेंगे, उसे अनुभव न था। जब द्वार पर आम ले जाकर पहुँचा, तो देखता है जमींदार के दो सिपाही दोनो तरफ़ से सुधुआ के कान पकड़े हुए डेरे की ओर लिए जा रहे हैं, श्यामा सजल आँखों से एकटक पिता को देख रही है।

आम क्या करे, वंकिम कुछ सोच न सका। जैसा पहले सोच रक्खा था, उसी के अनुसार, जैसे नियंत्रित यंत्र हो, श्यामा के सामने गाँठ खोलकर कुर दिया। इस समय एक सिपाही ने फिरकर देखा।

एक सहृदय मनुष्य को देख दुखी श्यामा ने कहा—"मेरे बापू को पकड़े ले जा रहे हैं, मारेंगे, तुम बचा लो!"

सुधुआ की वैसी दशा देखकर सिपाहियों पर वंकिम को ग़ुस्सा आ गया था। कड़ेपन से पूछा—"क्यों मारेंगे?"

"साढ़े सात रुपए लगान के बाक़ी हैं।" कहकर आँचल से श्यामा ने आँसू पोंछ लिए।

वंकिम झपटता हुआ चला गया।

(४)

वंकिम के पास रुपए न थे। हाथ में एक अँगूठी सोने की थी। उस पर कुछ क़ीमती एक नग था। पिता से उसने सुना था, अँगूठी दो सौ रुपए की है। भैयाचार के घर रुपए देने के सिवा पाने की आशा न थी। निकट ही दूसरे गाँव में एक

अच्छे महाजन थे, उनका नाम उसने गाँव में सुना था कि मालदार आदमी हैं। सीधे उन्हीं के यहाँ गया। उन्होंने बड़ी देख-भाल के बाद कहा—"आप हमारे मित्र पं० रामप्रसादजी के लड़के हैं, आपको ज़रूरत पड़ गई है, इसलिये हम तीस रुपए आपको देते हैं, यों हमारी निगाह में इसमें दस रुपए से ज़्यादा का सोना नहीं, और नग के लिये चार-पाँच जोड़ लेते हैं।" नग के हीरे से एक शीशे को खरोंचकर, हीरे की पूरी परीक्षा कर उन्होंने कहा। वंकिम को लगा तो बहुत बुरा, पर उपाय न था। वह उस अँगूठी की क़ीमत से सुधुआ का दारिद्र्य भी दूर कर देने का हौसला लेकर गया था। सोचा था, बेचकर, लगान चुकाकर, गाँव से भगने का सिर्फ़ रास्ता-खर्च लेगा, बाक़ी सब सुधुआ को देकर गाँव के क़साई ज़मींदार को समझा दिया जायगा कि ग़रीब किसानों को किस तरह प्यार करना धनी कहलानेवालों का धर्म होता है। पर आशा की वहाँ जड़ ही कट गई। अँगूठी रेहन कर, सिर्फ़ तीस रुपए लेकर वह तेज़ क़दम सीधे डेरे को गया।

तब तक वहाँ सुधुआ की सब दशा हो चुकी थी। बेंत की मार से उसकी पीठ फट चुकी थी। नीम के पेड़ के नीचे बेहोश मुँह के बल पड़ा था। मुश्कें बँधी थीं।

सामने ग़लीचा-बिछे तख़्त पर ज़मींदार दयाराम दोहरे के बाद तंबाकू खाने का उपक्रम कर रहे थे। गाँव के भले आदमी कहलानेवाले प्रायः सभी लोग चारपाइयों पर बैठे बलि के

बकरे की निगाह से मालिक दयाराम की ओर देख रहे थे। दोनो सिपाही तख्त के सामने लट्ठ लिए हुए खड़े थे।

सुधुआ को देखकर वंकिम को कुछ क्षण काठ-सा मार गया। निश्चल देखता रहा। फिर आगे जमींदार की ओर बढ़ा। जमींदार लोग व्यवहार-कुशल होते ही हैं, फिर दयाराम पर विद्या ने भी ठेठ-जमींदारों पर की-सी दया नहीं की—अपना काम और अदालत के काग़ज़ात यह आप देख लेते हैं। आदर से बुलाकर, बैठाकर, आने का कारण पूछा।

"आपने इसे मारा क्यों?" वंकिम ने पूछा।

"भाई मेरे, तहसील-वसूल का तो यह क़ायदा ही है। ये मारे न जायँ, तो न इनके रुपएवाले गढ़े से मिट्टी हटे, न लगान दें।" दयाराम हँसने लगे।

"आप जानते हैं। इसने इस साल आम भी नहीं लिए, इसके पास एक रुपया भी न था।" तेज गले से वंकिम ने कहा।

"ये सब चकमे हैं। बाहरी ऐसा रूपक न बाँधें, तो भीतर की बात खुल जाय।" दयाराम ने जनता की तरफ़ रुख करके कनखियों से राय ली।

एक ही अर्थ की भिन्न-भिन्न अनेक ध्वनियाँ हुईं—"मालिक को सब मालूम है।" "जैसे पेट की बात ताड़ लेते हैं।" "तभी तो भगवान ने भागवान बनाया है।" आदि-आदि।

प्रसन्न होकर उन्हीं लोगों से दयाराम फिर कहने लगे—

"अभी यह लड़के हैं, दुनियादारी का हाल तो कुछ मालूम है नहीं, इस्कूल में पढ़ते हैं, बस भड़क गए।"

वंकिम को असह्य हो गया। बोला—"आप लोग मज़ाक़ करते हैं, इधर उसके मुँह में चुल्लू-भर पानी छोड़ना भी रोक रक्खा है, वह मर रहा है, आप लोग दुनियादारी समझा रहे हैं।"

"आपकी इच्छा हो, तो घड़ों पानी उसके मुँह में छोड़िए, पर रुपया भी आप देंगे, या सिर्फ़ पानी छोड़ने के लिये आए हैं ?" कुछ गर्म पड़कर, कुछ मज़ाक़ के स्वर से दयाराम ने कहा।

साथ ही गाँव के और-और उनके भक्त लोग कह उठे—"मालिक की बात, रुपया कौन गाँठ खोलकर देता है ?"

वंकिम आग हो गया। इसी तरह गर्म होकर पूछा—"कितने रुपए हैं आपके ?"

"साढ़े सात" हँसकर दयाराम वंकिम की ओर देखकर बोले—"देते हैं आप ?"

"हाँ, ये लीजिए।" आठ रुपए वंकिम ने तख़्त पर रख दिए, कहा—"अब लिख दीजिए चुकता रसीद सुधुआ के नाम।"

गाँव के लोग एक दूसरे को खोद-खोदकर मुस्किराने लगे, जसका मतलब होता है—कैसा बेवक़ूफ़ है यह।

एक बार दयाराम को भी आश्चर्य हुआ। पर फिर उन्होंने रुपए बजाकर अठन्नी वापस कर दी, और एक चुकता रसीद लिख दी।

"यहाँ ये बहुत-से लोध हैं, इनसे कहिए, सुधुआ को इसके

घर उठाकर रख आवें।" वंकिम ने कुछ विनय-पूर्वक कहा।

दयाराम के दिल में बात बैठ गई। उन्होंने दो लोधों को रख आने की आज्ञा दे दी।

बेहोश सुधुआ के साथ वंकिम डेरे से चला गया।

(५)

"मालिक, अभी तक झमेले में मुझे याद न थी।" एक सिपाही ने कहा।

"क्या ?" दयाराम ने हँसती आँखें उठाकर देखा।

"आज यह बाग़ से गट्ठर-भर आम ख़ुद लादकर सुधुआ के घर लाए थे।"

"अच्छा !"

"हाँ मालिक !"

"क्यों जी देवीदयाल, (देवीदयाल गाँव के एक गण्य ब्राह्मण हैं।) यह क्या बात है ?"

"अब क्या कहा जाय मालिक ?" दूर मर्म तक ध्वनि को पहुँचाकर देवीदयाल हँसने लगे।

वे दोनो लोध सुधुआ को छोड़कर लौट आए। इनसे दयाराम ने पूछा—"क्यों रे, बाँके तुम लोगों के साथ गए थे, किधर गए ?"

"वहीं उसकी दवा-दारू का इंतजाम करने को रह गए हैं।" हाथ जोड़कर एक ने कहा। दूसरे ने 'हाँ मालिक' कहकर गवाही दी।

"क्यों देवीदयाल, तुम लोग तो ब्राह्मणों के सिरमौर हो गाँव में, कुछ समझ में आती है—क्या बात है ?"

"बात ऊपर रक्खी है। महा गँवार भी समझ जाय।" पं० देवीदयाल विशेष रूप अंतर्मुख हो गए।

"तो समझ ही से सब हो जायगा ? आज समझ गए, कल पानी पिओगे, परसों एक साथ पूड़ी खाओगे, तो ठीक होगा ?" निरीक्षक की दृष्टि से देखकर दयाराम ने पूछा।

देवीदयाल पहले तीन बिस्वेवाले कनवजिए थे, अब तेरह बिस्वेवाले बनकर गाँव के ब्राह्मणों में सिरमौर हैं। कहा—"पहले तो नीचे-नीचे से चलना चाहिए, फिर ऊपर आप बँध जायगा ; इन लोधों से पूछिए, हुक्के के लिये क्या कहते हैं—देंगे सुधुआ को हुक्का ?"

"क्यों रे, तुम लोग क्या कहते हो ? बात कुछ आती है समझ में ?" अपनाते हुए दयाराम ने पूछा।

"अब भी कुछ बाकी समझने को रह गया है मालिक ? कल से हुक्का-पानी कोई देगा, तो आप भुगतेगा।" लखुआ ने पूरे आत्मसंप्रदान के स्वर से कहा। फिर गाँव के झींगुर, बुलाकी, नथुनी आदि लोधों से अपने-अपने टोले में मना कर देने को कह दिया। सब लोध सच्चे डपोरशंख की तरह मुख बाए, समझकर, सिर हिलाकर राज़ी हो गए।

देवीदयाल ने कहा—"इन सूदों का कौन भरोसा, कहो चुल्लू-भर में लुटिया डुबो दें।"

लखुआ तेज़ आँखों देवीदयाल को देखकर बोला—"सुनो महाराज, हम बाँभन नहीं हैं, जो कुरमी-काछी, तेली-तमोली, सबकी पूरियों में पहुँचा पेल दें। हम हैं लोध—लोध का बच्चा कभी न कच्चा। अब खरी न कहलाओ। रूका बुआ को लोगों ने पकड़ा, सबने छोड़ दिया, फिर तुम्हीं पिलकर सत्यनारायण की कथा में खा आए।" कहकर सदर्प आँखें फेरकर ज़मींदार को भक्ति-भाव से देखने लगा।

पं० रामप्रसादजी गाँव आनेवाले थे। आज आ गए। घर पहुँचकर सुना कि वंकिम के संबंध में कोई मामला डेरे पर चल रहा है। उसी वक़्त डेरे चल दिए। पं० रामप्रसाद को देखते ही देवीदयाल ने धीरे से कहा—"अब गठ गया मामला, यह भी सपूत की करनी अपनी आँखों देख लें।"

सब लोग स्तब्ध हो गए। ज़मींदार ने आदर से बैठाला। फिर नमस्कार आदि के बाद कुशल तथा लखनऊ के हाल पूछने लगे।

पं० रामप्रसादजी अपने सम्मान के विचार से गंभीर होकर बोले—"सब कुशल है। इधर एक शिष्य के यहाँ विवाह था। न्योते पर जाना ही पड़ा। वह डिप्टी-कमिश्नर है। विवाह के समय भाषण करने के लिये कहा। हमने सोचा, विवाह का समय है, किस विषय पर भाषण करें ? फिर ब्रह्मचर्य-विषय पर कहा।"

रामप्रसादजी डब्बे से पान निकालकर ज़मींदार साहब

को देने लगे। उन्होंने सिकुड़कर मुलायम-मुलायम जवाब दिया कि "देवीदयालजी गाँव के मान्य हैं, इन्हें पहले दीजिए।"

पं० रामप्रसादजी ने देवीदयालजी की ओर हाथ बढ़ाया। उन्होंने कहा—"अभी स्नान नहीं हुआ। आप मालिक को ही दीजिए।"

रामप्रसादजी ने फिर मालिक की तरफ़ हाथ बढ़ाया। उन्होंने पान ले तो लिए, पर सामने के एक काग़ज़ के टुकड़े में लपेट-कर रख दिए।

गाँववालों के ऐसे स्वभाव से प० रामप्रसादजी को काफ़ी परिचय था। वह कई बार गाँव को ब्रह्मभोजवाली गुनहगारी अकारण दे चुके थे। स्वयं अच्छे ब्राह्मण न थे। प्रायः लोग पैरों पड़ाते थे। इसलिये मन-ही-मन घबराए। सोचा, शायद बंकिम की सिगरेटवाली बात खुल गई। इधर एक आदमी को ज़मींदार साहब ने एकांत में बुलाकर सुधुआ का मकान देख आने के लिये चुपचाप भेज दिया। वहाँ बाँके है या नहीं, वह देखकर बतलाए। फिर बैठकर फ़ालतू बातचीत करने लगे।

लौटकर आदमी ने संवाद दिया कि बाँके वहीं पर है। तब, अपने लोगों के साथ रामप्रसादजी को एक आवश्यक दृश्य दिखलाने के उत्साह से लेकर, ज़मींदार साहब सुधुआ के मकान की तरफ़ चले। रास्ते में कहा—"आज सुधुआ की तरफ़ से साढ़े सात रुपए लगान के बाँके ने दिए—गाँव में लेन-देन करने के इरादे पर शायद आपने बाँके को भेजा है ?"

पं० रामप्रसादजी सूख गए कि यह क्या माजरा है। प्रकाश्य बोले—"हमने तो ऐसी सम्मति उसे नहीं दी, उसके पास रुपए भी नहीं थे।"

अब तक सुधुआ का घर भी आ गया। भारतीय किसानों के घर में दरवाज़े नहीं होते। सिर्फ़ टट्टर रहता है। रात को भेड़िए से बकरियों को बचाने के लिये एक डंडे से बाँध दिया जाता है। फिर शूद्र के मकान में प्रवेश के लिये आज्ञा-विशेष आवश्यक नहीं। दरवाज़ा खुला था। सब लोग जूते-समेत भीतर धँस गए। साथ-साथ पं० रामप्रसाद भी गए।

जब रामप्रसादजी ने वंकिम को देखा, उस समय श्यामा पिता का शीश गोद में लेकर, कुछ उठाए हुए बैठी थी, वंकिम पड़ोस के गाँव से दवा ले आया था, झुककर मुँह में डाल रहा था। कुछ झुकी हुई श्यामा करुणा-दृष्टि से पिता को देख रही थी। श्यामा और वंकिम एक ही लक्ष्य पर एकाग्र थे। कभी-कभी श्यामा के बाल, कभी-कभी कपोल और मुख वंकिम के गालों से छू जाता था। सुधुआ के जबड़े जकड़ गए थे, दोनो खोलकर दवा पिलाने के प्रयत्न में थे। वहाँ ब्राह्मण और लोध में सामाजिक जितने स्तरों का भेद है, वह न था। लोग खड़े यही देख रहे थे। लोगों की निगाह में श्यामा और वंकिम के सामीप्य का जो अर्थ था, उसके साथ सुधुआ का सहयोग बिल-कुल न था। वह मर रहा है, लोग यह नहीं देखते थे, वह क्या कर रहा है, इसका दूरान्वय कर रहे थे। प्रकट सत्य को

छोड़कर अप्रकट तत्त्व को पहुँचे हुए थे। आँगन के दूसरी ओरवाले छप्पर के नीचे रोगी की सद्यश्च्युत पतझड़ के पत्र-सी जीर्ण शय्या थी। श्यामा और वंकिम अपना उत्तरदायित्व पूरा कर रहे थे। लोगों की आहट नहीं सुनी।

जब वंकिम दवा पिला चुका, और साश्चर्य परीक्षक की दृष्टि से देख रहा था कि दवा मुँह से निकली आ रही है, उसी समय पिता की नीति-धर्म से गुरु वज्र-गर्जना सुनी—"क्यों चमार, धर्म को धोकर पी गया?"

पिता के हितकर उपदेश से ताड़ित अनेकानेक भावनाओं की तड़ित् वंकिम की नसों में तेज बह चली। अपनी स्थिति मनुष्यता की क्षिति पर खड़ा होकर अच्छी तरह समझा दे, यह इच्छा बदलती हुई मानसिक दशा को बल पहुँचाकर केवल शक्ति बन गई—वह कुछ कह न सका, जो कुछ कहने को चला था, उसी ने रोक दिया।

पुत्र को चुपचाप खड़ा हुआ, तब तक भी निकलता न देखकर, रामप्रसादजी विना रोटी के तवे-जैसे, उसी की आग से, तप उठे, और पार्वतीय निर्झर की तरह प्रखर शब्द-गर्जन-स्वर से उस क्षुद्र उपल-खंड पर टूट पड़े। जब वह अपनी भाष्य और भाषण उभय प्रकार की शक्तियों से पुत्र के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे, उसी समय सुधुआ स्वर्ग सिधार गया—श्यामा पिता को हिला-हिलाकर ऊँचे स्वर से रोने लगी।

पूरी घृणा से पुत्र को सुनाकर कि उनके घर में अब उसके

लिये जगह नहीं है, पं० रामप्रसादजी वहाँ से निकल गए। साथ-साथ ज़मींदार तथा गाँव के लोग भी 'बड़ा बेहया—नालायक़ है' कहकर चल दिए। लोध की लाश से ब्राह्मणों को क्या सहानुभूति? वह तो उनके छूने लायक़ है नहीं। उसके संबंध में लोध सोचेंगे।

जो लोध वहाँ थे, वे चलते हुए सीख दे देने की तर्जना श्यामा को सुना गए। वे ज़मींदार के किसान हैं। ज़मींदार खेत-पात देने के उनके काम आ सकता है। सुधुआ की लाश से उन्हें क्या लाभ?—फिर जब मालिक ख़ुद नाराज़ हैं और श्यामा अपनी राह पर नहीं।

(६)

वंकिम के कहने पर श्यामा गाँव-भर की बिरादरी को पिता का मृत्यु-समाचार दे आई, देर तक प्रतीक्षा करती रही, पर कोई न आया। तब वंकिम ने कहा, जान पड़ता है, कोई न आवेगा।

वंकिम ने जिस काम का श्रीगणेश किया था, सोचा, उसे पूरा किए विना बाहर न जायगा, आख़िर पिताजी ने तो घर से निकाल ही दिया है। जब यथार्थ बात के समझदार यहाँ नहीं, तब यहाँ रहकर होगा क्या। मन साथ-साथ श्यामा के लिये भी सोचता, इसका क्या होगा? इसे भी तो भैयाचार छोड़ चुके हैं।

"अब शायद कोई न आवेगा बाबू!" श्यामा ने पहलेपहल वंकिम का संबोधन किया।

"यही मैं भी सोचता हूँ श्यामा !"

"तो अब क्या होगा ?" निराशा की साक्षात् प्रतिमा ने जैसे कहा।

"अब तो हमीं तुम हैं।"

"हम-तुम कैसे लहास गंगा ले चलेंगे ?"

"लाश गंगा पहुँचाना कठिन है। श्यामा, तुम्हारी शादी हो चुकी है ?"

"हाँ।"

"तुम्हारी ससुराल यहाँ से कितनी दूर है ?"

"वह है, जगतपुर में।"

"तो वहाँ से मैं तुम्हारे शौहर और ससुर को बुला लाता हूँ।"

"वहाँ अब कोई नहीं !"

"क्यों, कहाँ हैं ?"

"भगवान के घर !"

"तुम्हारा शौहर ?"

"वह भी जब सात साल के थे, चले गए। सास है, उसने घर-बैठा कर लिया है।"

"तो तुम कहाँ जाओगी श्यामा ? मेरे पिताजी ने मुझे घर से निकाल दिया है, तुम सुन चुकी हो, अब मेरे लिये घर में जगह नहीं है, आज ही रात आठ बजेवाली गाड़ी से मैं कानपुर चला जाऊँगा।"

सुनकर, सजल आँखों से बढ़कर, श्यामा ने बंकिम का हाथ

पकड़ लिया—"मुझे भी ले चलो बाबू, तुम्हारे बर्तन मलकर दो रोटी खा लूँगी, यहाँ मैं नहीं रहना चाहती।"

वंकिम चुपचाप खड़ा रहा। न-जाने कहाँ से एक शक्ति ने आकर उसे उभाड़ दिया। कहा—"अच्छा। सुनो। फावड़ा ले आओ। अब और जगह नहीं। तुम्हारे पिता को यहीं रक्खेंगे।"

श्यामा ने फावड़ा निकालकर दिया। वंकिम लाश के बराबर लंबी जगह अंदर जाकर खोदने लगा। पहले कुछ देर तक श्यामा देखती रही, फिर दुःख में भी मुस्किराकर आकर फावड़ा पकड़ लिया। बोली—"तुमसे नहीं बनता। मुझे दे दो।"

वंकिम हाँफने लगा था। फावड़ा दे दिया। कोंछी का काँछा मारकर श्यामा खोदने लगी।

वंकिम कुछ दम लेकर बोला—"तुम्हें आदत है। तुम खोदो। तब तक मैं कफ़न खरीद लाऊँ।" कहकर वह पास के गाँव चला गया।

आज इस रास्ते लोधों का निकलना बंद है। जमींदार डेरे पर यह कहकर गाँव गए हैं कि "जब तक दोनो हमारे पास न आवें, और माफी न माँगें, तब तक कोई इनसे बातचीत न करे।"

जब वंकिम श्यामा के पास आया, तब गढ़ा तैयार हो चुका था। सुंदर खुदा था। एक बार खड़े-खड़े वंकिम ने देखा। फिर कहा—"श्यामा, अब तुम दो घड़ा पानी ले आओ। लाश को रखकर एक में तुम नहा लेना, एक में मैं।"

"लोहे का एक ही घड़ा है।" विनम्र स्वर से श्यामा ने कहा।

"मिट्टी, लोहे किसी के भी हों, पानी ले आओ।"

श्यामा एक मिट्टी और एक लोहे का घड़ा लेकर पास के खेत-वाले कच्चे कुएँ से पानी लेने चली। तीन-चार स्त्रियाँ खेत में मिलीं, देखकर आपस में बतलाने लगीं—"ऐसा जगुआ गाँव में अब तक तो किसी ने न किया था। एक यही नोखे की जवान हुई है!"

श्यामा के कानों में आवाज़ पड़ी, पर पलकें झुकाकर चली गई। मन में कहा—"ये अपने काम आनेवाली पड़ोसिनें हैं!"

घड़े भरकर लौट आई। तब वंकिम ने लाश उठाने के लिये बुलाया। पैरों की तरफ़ श्यामा ने पकड़ा, सिर की तरफ़ वंकिम ने। मौन कपोलों से बह-बहकर श्यामा के आँसू पिता के चरणों को धो रहे थे। दोनो ने लाश को नया कफ़न पहना, ढककर, गढ़े में रख दिया, फिर मिट्टी छोड़ने लगे।

यह काम पूरा कर वंकिम ने कहा—"श्यामा, अब सूरज डूब रहा है। हमको जल्दी करनी चाहिए। तुम्हारे यहाँ क्या-क्या है?"

"हल है, माची है, सेरावन है, और पुर-बरेत, हँसिया, गड़ासा, कुल्हाड़ी, यही खेती का सामान है, और दो लोटे, दो थाली, तवा-चिमटा, एक कराही, एक कलछुल, एक घड़ा लोहे का, रस्सी और जाँत।"

"अच्छा, नहा लो, फिर गीली धोती में बरतन बाँध लो। मैं इधर को मुँह किए बैठा हूँ। फिर मैं भी नहा लूँ। जल्दी चलें। फिर गाड़ी न मिलेगी।"

वंकिम मुँह फेरकर बैठ गया। श्यामा नहाने लगी। लोहे के घड़ेवाला पानी वंकिम के लिये रख दिया। फिर वंकिम नहाया। श्यामा गीली धोती में बरतन बाँधने लगी। नहाकर, उसी धोती को निचोड़कर वंकिम ने पहना।

अँधेरा हो गया था। स्टेशन क़रीब ही डेढ़ मील पर था। बरतनवाला गट्ठर वंकिम उठाने लगा, तो श्यामा ने रोक लिया, कहा—"मुझे तो आदत है, मेरे सिर रख दो।" वंकिम ने रख दिया।

बाक़ी लावारिस सामान जमींदार के लिये छोड़कर उस संध्या में दोनो हमेशा के लिये गाँव से निकल गए।

(७)

वंकिम कानपुर आकर एक धर्मशाला में टिका। वहाँ से पता लगाकर आर्य-समाज के मंत्री सत्यप्रकाशजी से मिला। सत्यप्रकाशजी ऊँचे दरजे के शिक्षित प्रभावशाली मनुष्य हैं, अभी तक विवाह नहीं किया, करने का इरादा भी नहीं। वंकिम की कथा सुनकर हँसे। सामाजिक ऐसी अनेक प्रकार की व्याधियों की वह चिकित्सा करते रहते हैं, इसलिये अविश्वास नहीं किया। बल्कि सुनकर प्रोत्साहन देते हुए सब प्रकार की मदद करने को तैयार हो गए। उन्होंने वंकिम को अपने यहाँ बुला लिया, और एक दिन आर्य-समाज में दोनो का विवाह कर दिया। वंकिम के वीरोचित कार्य से वह इतने प्रसन्न हुए कि अपने वकील और कर्मचारी मित्रों से कहकर

खर्च के लिये प्रतिमास तीस रुपए चंदा करा दिया, पंद्रह स्वयं देते रहे, और उसे वहीं स्कूल में भर्ती कर दिया। वंकिम और श्यामा की क़रीब बराबर उम्र थी। बाप का इकलौता लड़का होने के कारण अच्छी तरह पला था, जल्द तगड़ा, जवान हो गया था। संसार का एक ही प्रहार से पूरा परिचय हो गया था। वह जी तोड़कर पढ़ने में श्रम करने लगा। सत्यप्रकाशजी स्वयं तत्परता से उसे पढ़ाते थे। अपने में मिला लिया। श्यामा के भी पढ़ने और दस्तकारी सीखने का प्रबंध हो गया।

कई साल हो गए, वंकिम अपने गाँव नहीं गया। वहाँ कितना परिवर्तन हो गया, पर गाँव के लोग अपने स्वभाव से जहाँ थे, वहीं ठहरे हुए हैं। अत्याचार उसी प्रकार होते हैं, प्रतिकार का मार्ग वैसा ही रुका है। पं० रामप्रसादजी ने फिर वंकिम की कोई खबर नहीं ली, मरते-मरते मर गए।

(८)

रामप्रसादजी का देहांत होने पर ज़मींदार पं० दयाराम ने बाग़ में अपना क़ब्ज़ा कर लिया। जो पड़ोसी भैयाचार थे, उन्हें बाहर से उन्होंने भैयाचार स्वीकार ही न किया। गाँववालों को सिखला दिया कि कोई भैयाचार न कहे। घर में भी अपना क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ अपने बैल बँधवाने लगे। साल-भर से बाग़ के आम-महुए वही बिनवा रहे हैं। पहले भैयाचार ने ज़बानी ख़ुशामद की, पर दयाराम न पसीजे, तब दावा कर दिया। उधर रामप्रसादजी की लड़की को भी कई महीने बाद

पिता के गुजरने का संवाद मिला। वह दूर दूसरे जिले में ब्याही थी। अब उसके एक लड़का था। सरला पति और पुत्र के साथ जमींदार से मिली, और नाना की संपत्ति नाती को देने की बड़ी आरजू-मिन्नत की, पर जमींदार ने कहा—"हम तो दूसरे गाँव में रहते हैं, हमको कुछ पता नहीं, आप उन्हीं की लड़की हैं, आप अदालत से ले लीजिए।"

फलतः नाबालिग बच्चे के वली ने अदालत में दरख्वास्त दे दी। भैयाचार को भी इससे अपने हक़ के लिये लड़ने की हिम्मत हुई। इधर जमींदार दयाराम ने इन सबको उठल्लू और बाग़ को लावारिस साबित किया। कई महीने तक अदालत चली। जमींदार के गवाह सबसे मजबूत थे। नाती के सबसे कमजोर।

दयाराम चारो ओर से चौकस रहते थे। एक पेशी को गए, तो मालूम हुआ, नाती-पक्षवाले रिश्वत की पूरी तैयारी से डिप्टी साहब से मिलने गए हैं, क्योंकि अदालत के गवाहों की कम-जोरी उधर रुपए से पूरी करेंगे। दयाराम चलते-पुर्जे आदमी थे। शहर से बात-की-बात में सौ रुपए की डाली खरीदकर लगवा ली, और डिप्टी साहब के बँगले पर पहुँचे। देखा, वास्तव में नाती-पक्षवाले डटे थे। डिप्टी साहब बाहर निकलनेवाले थे। दोनो पक्ष एक दूसरे को घूरते हुए स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे कि डिप्टी साहब अपनी धर्मपत्नी के साथ बाहर निकले। सब लोग खड़े हो गए।

डिप्टी साहब ने दयाराम से पूछा—"इस बाग़ का हक़दार कोई वंकिम है ?"

"मैंने तो किसी वंकिम को नहीं देखा हुजूर !"

डिप्टी साहब की धर्मपत्नी श्रीमती श्यामकुमारी देवी ने ज़मींदार पं० दयारामजी की ओर उँगली उठाकर अपने अर्दली से कहा—"डाली-समेत इसे कान पकड़कर बाहर निकाल दो।"

सरला को संकुचित एक तरफ़ खड़ी देखकर डिप्टी साहब ने सस्नेह कहा—"सरला ! तू मुझे भूल गई !"

बाग़ पं० रामप्रसादजी के नाती को मिला।

डिप्टी साहब का नाम वेदस्वरूप है।

अर्थ

पंजाबमेल पूरी रफ्तार से कलकत्ता जा रहा है। दूसरे दर्जे में दो मुसाफ़िर पास-पास बैठे हैं। कुछ देर मौन रहकर एक ने दूसरे से नाम पूछा, जब वह प्रयाग में गाड़ी पर चढ़ा। उसने कहा—"मेरा नाम दिनेशकुमार है।" थोड़ी देर में घनिष्ठता बढ़ गई। पहला मुसाफ़िर हीरालाल कलकत्ता लौट रहा है। वहाँ व्यवसाय करता है। नवयुवक है, धनी व्यवसायी का लड़का, दिल्ली गया था। दिनेश भी नवयुवक है। हीरालाल को मालूम हुआ कि एक अच्छी जगह सिनेमा में कहानी लिखने की दिनेश को मिली है, इसलिये कलकत्ता जा रहा है। हीरालाल खुद भी हिंदी के कथानक, उपन्यास तथा नाटक-सिनेमा-साहित्य का शौक़ीन है, कुछ ज्ञान भी इधर उसने अर्जित कर लिया है। पूछा—"हिंदी के उपन्यास-लेखक रामकुमारजी को आप जानते हैं?"

"हाँ, वह तो आजकल प्रयाग ही रहते हैं।" दिनेश ने कहा।

"मेरे विचार से उनके जो उपन्यास निकले हैं, उनकी जोड़ के हिंदी में दूसरे नहीं, आप क्या कहते हैं?"

"मेरा भी यही विचार है।"

"उनका एक जीवन-चरित इधर 'भारती' में प्रकाशित हुआ है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें एक ईश्वरीय सत्य है। आप कहें, तो सुनाऊँ।"

"सुनाइए।"

हीरालाल कहने लगा—"रामकुमार एक कुलीन ब्राह्मण के घर का बालक ही था, जब घर की पूजार्चा देखकर, पाठ सुनकर हिंदू-धर्म पर उसे पूरा विश्वास हो गया! जैसा सुना, वैसी ही धारणा भी बँध गई कि अगर आज अकेले भीम होते, तो म्लेच्छों के पैर क्षण-भर के लिये भी उनके सामने न ठहरते। जहाँ गदा को घुमाने पर भगदत्त के हाथी सेमर की रुई की तरह आकाश में उड़ गए, कुछ तो अब भी चक्कर काट रहे हैं, वहाँ म्लेच्छों का पता न रहता कि किस लोक में, अँधेरे की तरह प्रकाश में कहाँ, ग़ायब हो गए। अगर कहीं महावीर स्वामी आ जाते—आ क्या जायँ, अब उनके समकक्ष योद्धा कोई रह ही नहीं गया, द्वापर में इसीलिये वह लड़े नहीं, नहीं तो वह अमर हैं, कहीं गए थोड़े ही हैं! और उखाड़-उखाड़कर पटकते पहाड़, तो सारी अक़्ल हवा हो जाती तुर्रमखानों की। इस तरह श्रीराम और कृष्णजी को सोचता हुआ आजकल के रावण की सशस्त्र सेना को वानर-मात्र की सहायता से परास्त कर देता, कभी कृष्णजी से असंभव कार्य-रूप गोवर्धन धारण करा, उसके नीचे देश के भगवद्भक्त गोप-गोपियों को आश्रय देकर वर्तमान इंद्र की दुश्शासन-वर्षा से उद्धार कर लेता,

कभी किसी राक्षस-रूप में कृष्ण को घुसेड़कर पेट चिरवाता बाहर निकालता। इस तरह बंदर को आदमी और आदमी को बंदर बनाने की आदत पड़ गई। करुणा तुलसी-कृत रामायण और सूरसागर के दैनिक पाठ से बढ़ती गई। नवें दर्जे में था, इसी समय भक्ति के आवेश में सूझा, म्लेच्छों की विद्या न पढ़ूँगा, यह धन के लिये है, ज्ञान के लिये नहीं। इस समय यह पंद्रह साल का बालक था। घरवालों का शासन प्रबल था, इसलिये स्कूल जाना पड़ा। पर वह रह-रहकर सोचता था कि उसके घरवाले ढोंगी हैं; बाहर से तो भगवान् का नाम लेते हैं, पर भीतर से रुपया ही उनका लक्ष्य है। घरवालों से उसे घृणा हो गई। धीरे-धीरे दो साल का समय और बीता, और इसने प्रवेशिका-परीक्षा पास कर ली। इसी समय पिता ने उसका विवाह किया। बहू युवती थी। बहू के घर आने पर रामकुमार ज्यों-ज्यों क्षीण हो चला, उसकी ईश्वर-भक्ति और आस्तिकता त्यों-त्यों प्रवीण होने लगी। पति ही पत्नी का ईश्वर है, यह संस्कार यद्यपि घर से पत्नी को प्राप्त हो चुका था, फिर भी रामकुमार ने अपनी ओर से शिक्षा देने की ग़फ़लत न की। फलतः वह गंभीर होने लगा, और उसकी धार्मिक साधना भी बहू को प्रभावित करने के लिये बढ़ गई। बहू सुंदरी थी। पत्नी को पूर्ण मादकता से प्यार देना धर्म में दाख़िल है। अतः इधर भी रामकुमार संसार की भावनाओं को स्वर्ग में बदल-बदलकर विहार करने लगा। पिता ने कॉलेज

जाने के लिये कई बार कहा। वह वृद्ध हो गए थे। शारीरिक शासन करने में असमर्थ थे। रामकुमार ने पिता के शब्दों पर ध्यान न दिया। पत्नी ने भी श्वशुर के आदेश की एक बार पुनरावृत्ति की, क्योंकि उसे भय था कि पति के कॉलेज न जाने का कारण वही समझी जायगी। रामकुमार ने कहा—'अँगरेजी शिक्षा से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।'

"तब तक रामकुमार को अर्थ की चिंता न थी। पिता को पेंशन मिलती थी, संसार-चक्र मजे में चला जा रहा था। उसकी माता का कुछ दिन बाद देहांत हो गया। एक साल का क्रिया-कर्म भी पूरा हुआ। पिता ने कहा—'बेटा, हम करारे के रूख हैं; तुमने पढ़ा नहीं, तो हमारे रहते कोई काम ही कर लो; नहीं तो पीछे तुम्हें कष्ट होगा।' रामकुमार गंभीर होकर बोला—'आप इसकी चिंता न करें।' मन-ही-मन कहा, कितना अविश्वास इन्हें ईश्वर पर है—'पशु-पक्षिउ की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करै; अरे मन, धीरज क्यों न धरै!' रामकुमार को बालक-काल से संतों की उक्तियों पर दृढ़ विश्वास करने की आदत पड़ गई थी। गोस्वामीजी की चौपाई याद आई—'विश्व-भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।' जो भरत संसार का पालन करते हैं, वह भोजन न देंगे, उन पर कितना अविश्वास है इन लोगों को! सोचता हुआ वह चला जाता, पिता खिन्न हो जाते।

"कुछ समय और पार हुआ, एक रोज पिता को कुछ बुखार

आया, दो-तीन दिन बाद उनका दम निकल गया। आज पहला दिन था, जब गाँव के लोगों से रामकुमार को एक गृहस्थ की तरह, दीन होकर, धार्मिक उद्दंडता छोड़कर, बर्ताव करना पड़ा। पहला बुलावा गया, और लाश उठाकर गंगाजी चलने के लिये कोई न आया, तब नाई ने समझाया कि 'भैया, यह हाथ जोड़ने का समय है।' रामकुमार जाकर घर-घर हाथ जोड़ता फिरा। लोगों ने सलाह करके कहा, 'रामचंद्र शुक्ल मरे थे, तब लोगों को (१५) के पेड़े उनके लड़के ने खिलाए थे; कहो, १५ के पेड़े खिलाओगे ? तो चलें अपने गरोह के बीस आदमी।' रामकुमार को स्वीकार करना पड़ा। घाट से लौटने पर तेरहीं तक बड़ी विपत्ति रही। कुटुंबों का व्यवहार खासे दुश्मनों का-सा रहा। एक की जगह तीन-तीन लेकर टले। माता का भी क्रिया-कर्म उसी ने किया था। पर तब पिता थे, इसलिये संसार का बर्ताव नहीं समझ सका। तेरहीं के बाद उसकी पत्नी विद्या ने कहा, 'नक़द आठ सौ रुपए थे, सब खर्च हो गए।' धर्म के दबाव से पत्नी ने यह न कहा कि कोई काम देखो, नहीं तो इस तरह और कब तक चलेगा। रामकुमार ने कहा, 'अच्छी बात है, खर्च होने दो, मुझे धन के मालिक का पता मालूम है।'

"कुछ समय और बीता, रामकुमार की पूजा बढ़ चली। गाँववाले आपस में बतलाने लगे, 'कैसा बेवक़ूफ़ है, पढ़ा-लिखा है, कहीं नौकरी या रोजगार नहीं करता, रामायण लिए चार-चार घंटे मंदिर में बड़बड़ाया करता है।' इसके जवाब में कोई

कहता है, 'बाप की कमाई का रुपया गाँजा है; हमारी-तुम्हारी तरह नदार है ? कराया तो तुमने तेरहीं में मनमाना खर्च, फिर रुका ? नहीं जाता नौकरी करने। जब माल होता है, तब भगवान का नाम सूझता ही है, आखिर बैठा-बैठा क्या करे ? अब आगे बर्षी में कराओ खर्च दो हजार, देख लो, कभी जो हाथ खींचे।' इधर एक रोज ऐसा हो गया कि विद्या के हाथ में एक पैसा भी न रहा। उसने पति से कहा कि 'आज से अब एक पैसा भी खर्च के लिये नहीं है।'

"युवक रामकुमार गंभीर होकर बोला, 'अच्छी बात है, आज पैसा हो जायगा।' जैसा उसने पढ़ रक्खा था कि भरतजी का नाम जपने पर अर्थ होता है, शाम होने पर एक कोठरी में बैठकर भरतजी का नाम जपने लगा। रात ग्यारह बजे तक पाँच हजार जप पूरा कर, वहीं एक चुटके में यह लिखकर कि मेरे इस जप की जो मजदूरी होती हो, यहीं अँगोछे पर रख दीजिए। उठकर पत्नी के पास आया। उधर विद्या भी चूल्हे के पास भोजन तैयार कर बैठी हुई पति के लिये तपस्या कर रही थी। गंभीर भाव से भोजन कर रामकुमार बाहर आया, तब विद्या ने भी भोजन किया। मारे डर के उसने कारण न पूछा। प्रेम से उच्छ्वसित हो, गंभीर भाव से, पलंग पर पड़े-पड़े पति ने स्वयं पत्नी से अपने अर्थोपगम का मंत्र बतलाया। विद्या मुँह फेरकर हँसने लगी।

"सुबह उठकर रामकुमार नहाया, फिर भक्ति-भाव से उस

कोठरी में गया। विद्या मुस्किराती हुई बाहर से झाँकने लगी। रामकुमार ने देखा, भीतर अँगोछा जिस तरह फैलाया था, उसी तरह फैला है; भरतजी पाँच हज़ार नाम जप की मज़दूरी उस पर नहीं रख गए। हृदय को बड़ा दुःख हुआ। मारे लज्जा के पत्नी से आँखें न मिला सका। विद्या बड़े कष्ट से हँसी रोके हुए थी। सांत्वना की बातें हँस डालने के भय से नहीं कह रही थी। इसी समय छक्कन साह ने द्वार पर आकर पुकारा। छक्कन पहले बचका लादते थे। अब रुपया क़र्ज़ दिया करते हैं। रामकुमार द्वार पर गया, तो छक्कन ने पालागन करके कुशल पूछी। अनुभवी छक्कन पड़ोस के दूसरे गाँव में रहते हैं। आलसी, अकर्मण्य आजकल के बाबू युवकों की नस-नस से वाक़िफ़ हो चुके, उन्हें थोड़े रुपए देकर काफ़ी रक़म—सोने-चाँदी के गहने ले चुके हैं। रामकुमार के पिता का देहांत हो चुका है, पेंशन बंद हो गई है, जवान लड़का बहू के रूप में फँसकर बाहर पैर नहीं निकालता, हैसियत इतनी अच्छी नहीं कि इसी तरह हमेशा निभे, कहीं बीच में रुपयों की ज़रूरत हुई, तो ऐसा न हो कि दूसरे के हाथ शिकार फँस जाय, यह सब सोचकर छक्कन साह घर से चले थे। सरल रामकुमार ने पहले ही कहा, 'पिताजी की तेरहीं में रहा-सहा रुपया ख़र्च हो गया है, अब तो बड़ी दिक़्क़त में हैं।' छक्कन का श्रम सफल हुआ। बड़ी हमदर्दी से बोले, 'तो डर किस बात का है? आप तो घर के लड़के हैं। जैसे यह घर आपका, वैसे वह

घर भी आपका। आपका खर्च न रुकेगा, रुपयों का इंतज़ाम कर दिया जायगा।' रामकुमार के विचार से साक्षात् भरतजी आ गए। बोला, 'रुपए तो अभी मुझे चाहिए।' छक्कन समझ गए कि यह बेवक़ूफ़ है, यह मुझसे उसी तरह रुपए लिया चाहता है, जैसे अपने बाप से लेता था। बोले, 'तो कितने रुपए अभी आपको चाहिए ?' 'दो सौ।' छक्कन ने कहा, 'हमारे पास होते, तो हम दे देते ; हमें दूसरे से लेकर देना है, और वह बग़ैर कुछ रेहन रक्खे रुपया न देगा। अगर आप कहें, तो हम अपने यहाँ से २० तोले की जंजीर सोने की रेहन करके रुपए ले आवें। आप सोलह तोले भी हमारे यहाँ सोना ले आवें, तो पिछले पहर तक दो सौ रुपए ले जा सकते हैं। दूसरे के पास जायँगे, तो २) रुपया सैकड़ा ब्याज से कम में न देगा, हम १) ही रुपया लेंगे।' इसके सिवा कोई चारा न था। रामकुमार ने रुपयों का इंतज़ाम कर रखने के लिये कह दिया। उधर छक्कन घर गए, इधर यह पत्नी के पास आया। बड़ी लाज लगी, पर उपाय न था, विद्या से कहा, अपनी 'जंजीर दे दो, तो पिछले पहर रुपए ले आऊँ।' अम्लान विद्या ने बॉक्स खोलकर जंजीर निकाल ली ; फिर पति को देखती हुई, उसे ही हर तरह पाने की प्रार्थना से हाथ पर रख दी। रामकुमार जंजीर लिए पड़ा रहा। चौका-टहल कर, पानी भरकर, चलती हुई महरी ने पूछा, 'आज अभी तक भैया पड़े हैं, गाँव के लोग कहते हैं, आज सुबह छक्कन साह आए थे, जान पड़ता है,

दिवाला छः ही महीने में निकल गया, क्या बात है बहू ?'
'बात क्या है ? तुम अपना काम करो. कहने के लिये,
दुनिया है, किसी की जीभ में ताला पड़ा है ?' भोजन पकाकर,
पति को समझाती हुई कि 'तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो—
फिर हम दोनो एक साथ भीख माँगेंगे, पर अब मैं भी तुम्हें
कहीं न जाने दूँगी, मेरे चार हजार के गहने हैं, तुम सब बेच
डालो।' रामकुमार को आज कार्यतः पहलेपहल प्रिया के अपार
प्रेम का परिचय मिला। उठकर नहाया, भोजन किया, शाम
को ३० तोले की जंजीर के बदले दो सौ रुपए लेकर घर लौटा।

"हृदय को बड़ी चोट पहुँची। 'जो राम पृथ्वी के ईश्वर हैं,
जो भरत सृष्टि-भर को भोजन देते हैं, उन्होंने स्वयं अपने भक्त
की लाज ले ली, अब मैं किस विश्वास पर उन्हें पुकारूँ ?
वे मेरे किस काम आएँगे ?' सोचते-सोचते मस्तिष्क में गरमी
छा गई। प्यार की जगह चोट खाकर मनुष्य मुश्किल से
सुधरता है। इसी समय याद आई, 'भगवान् चित्रकूट में हैं।
तुलसीदासजी को वहीं उनके दर्शन हुए थे।' काग़ज़ लेकर
उनके नाम चिट्ठी लिखने लगा। लिखा—

प्रभो,

मुझे तुम्हारा बड़ा भरोसा था। मेरी नाव अब मझधार में
है। पर तुम्हारी कृपा तो मुझे नहीं नजर आती। अब तुम्हारे
सिवा संसार में मेरी मदद करनेवाला कोई नहीं है। मेरे
पिता का भी सहारा तुमने छुड़ा दिया। अब तो दया करो।

तुमने सुग्रीव और विभीषण को राजा बना दिया, तो मेरी कुछ तो खबर करो। प्रभो, मैंने तुम्हीं को संसार में माना है, और आज तुम्हारी ओर से मुँह फेरते हुए छाती दो टूक हुई जा रही है। प्रभो, दास पर दया करो, वह बड़े दुःख में है। रामायण में भक्त शिरोमणि तुलसीदासजी ने लिखा है—

जो संपति शिव रावणहिं दीन दिए दस माथ;
सोइ संपदा विभीषणहिं सकुचि दीन रघुनाथ।

क्या यह सब झूठ ही है? रघुनाथ, विश्वास जो नहीं होता? अधिक और क्या लिखूँ? तुम तो हृदय हृदय का हाल जानते हो, स्वामिन्!

तुम्हारा दास—
रामकुमार

"ऊपर लिफ़ाफ़े में, श्रीरामचंद्रसिंह, रामघाट चित्रकूट, सीतापुर, बाँदा लिखकर चिट्ठी डाकख़ाने में छोड़ दी। एक-चित्त से प्रभु के उत्तर की राह देखता रहा। चिंता से दुर्बल हो गया। एक दिन चिट्ठीरसा वही चिट्ठी वापस ले आया। चिट्ठी देखकर रामकुमार अर्द्ध-विक्षिप्त हो गया।

"धीरे-धीरे वर्षी का समय आ गया। लोग स्वयं उसे बुलाकर सलाह देने लगे कि 'कुल कमाई तुम्हारे पिता की है, ऐसा न हो कि स्वर्ग में उन्हें संकोच हो।' लोग इस प्रसंग पर रामकुमार को काफ़ी आदर देते थे। उसके चले जाने पर आपस में कहते, 'इनके पिता हँसिया-खुर्पी छोड़कर परदेस गए थे, ख़ैर, उनकी तो निबह गई, पर इन्हें देखो, पकड़ाते हैं चार साल में।'

"विद्या ने कभी पति को कोई सलाह न दी। पति की ही मर्ज़ी उसकी मर्ज़ी रही। रामकुमार के हृदय को भक्ति से स्वार्थ-पूर्ति न होने पर एक चोट लगी है, यह वह समझ चुकी थी, इसलिये अपने स्नेह से बराबर उसे सिक्त रखने का प्रयत्न करती रहती। इसी बल से रामकुमार चल-फिर रहा था। पिता की बर्षी में दो हज़ार का खर्च है। इस बार विद्या के सब गहनों की बाज़ी है। बिना बर्षी किए जा नहीं सकता, पिता को लोग हँसेंगे। यह सोच-सोचकर एक दिन बर्षी की तैयारी करनी पड़ी। विद्या ने कुल ज़ेवर निकालकर दे दिया। उनकी तरफ़ देखा तक नहीं। बराबर निगाह पति की आँखों से मिली रही।

"बर्षी हो गई। दो हज़ार ब्राह्मणों का जमाव रहा। एक दिन उसने अपने ही कानों शाम को आते हुए सुना; लोग बातचीत कर रहे थे, 'कैसा बेवक़ूफ़ बनाया?' रामकुमार संसार से सब प्रकार हताश हो गया। एक दिन विद्या को बिदा कराने के लिये उसका भाई आया। रामकुमार को निराभरण विद्या को भेजते हुए बड़ी लज्जा लगी। पर वह स्वयं कुछ दिनों के लिये विद्या से अलग होना चाहता था। पति को छोड़कर पिता के यहाँ जाने की विद्या की भी इच्छा न थी। उसने निश्चय कर लिया था, एक दिन इनके साथ हाथ पकड़कर हमेशा के लिये घर छोड़ेगी। ऐसी दशा जब उत्तरोत्तर हो रही है, तब वह दिन भी शीघ्र आनेवाला है, जब उसे स्त्रीत्व की विभूतियों से अमर, ऊँचा आदर्श पति के प्रेम में पूरा करना होगा। उसे

बिना गहनों के मायके जाने में लाज न थी, जहाँ उसके बाल-केलियों से उज्ज्वल, निराभरण रूपवाले दिन बीते थे। वह केवल पति के सोच में थी। पर रामकुमार, कुछ समय, हीरे की खान ढूँढ़ने के लिये निकले हुए योरपीयों की तरह, अर्थ के अन्वेषण में अकेला चलना चाहता था। विद्या को घर में निस्संग रहने के कारण कष्ट होगा, सोचकर, मौक़ा देख, एकांत में उसने समझाया कि जब तक किसी जगह वह पैर न जमा सके, तब तक विद्या का मायके ही रहना अच्छा होगा, और उसके बिदा होने के बाद वह भी अर्थ की तलाश में निकलेगा।

"विद्या पति की पद-धूलि लेकर भाई के साथ चली गई। रामकुमार भी अर्थ की खोज में बाहर निकला। लखनऊ, कानपुर और प्रयाग में कई जगह गया, पर किसी ने भी न पूछा। वह क्या जाने कि संसार किसे कहते हैं, एक साधारण-सी जगह के लिये कितने असाधारण कार्य करने पड़ते हैं, कितना छल, कितनी ख़ुशामद, कितनी सिफ़ारिश दो रोटियों की नौकरी के लिये आज ज़रूरी हो रही है? उसके राम इस संसार के स्वामी हो सकते हैं, पर बर्ताव में इस संसार के स्वामी उसके राम नहीं। सभी जगह उसे अपमान सहकर लौटना पड़ा; सभी ने उसे बेवक़ूफ़ बनाकर छोड़ा। उसके हृदय की कौन जानता था? पर उसकी मूर्खता नौकरी के लिये बेक़ायदा आकर गिड़गिड़ाने पर सब पहचान लेते थे। वह कितना पवित्र है, इसकी किसे आवश्यकता है? उसे संसार का, ऑफ़िस का

कुछ ज्ञान नहीं, यह सब समझ जाते थे। उसने क्यों पहले से आफिस का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया? दस रुपए की नौकरी? नहीं है। रुपया पेड़ में फलता है? लाखों का माल किसी के पास होता है, तो वह लुटा देता है? लोग दमड़ी की हंडी बजाकर लेते हैं।

"सब जगह ठोकरें मिलीं। रामजी के विश्वास पर इधर जो शैथिल्य आ गया था, संसार का जितना तृण इस मंद अंगार पर आ पड़ा था, संस्कार की तेज हवा से जलने लगा। तमाम आग राम के ही विश्वास में बदल गई। बार-बार हृदय में स्पंद-स्पंद पर ध्वनित हो चला—जिन पर इतने बड़े-बड़े महात्मा विश्वास करते आए, वह एक मिथ्या कल्पना-मात्र है? आज तक जिसके सहारे का भरोसा किया, वह शून्य की तरह कुछ भी नहीं? रामकुमार का मस्तिष्क और हृदय जलने लगा। प्रयाग-स्टेशन आ, चित्रकूट के लिये टिकट कटाकर गाड़ी पर बैठ गया।

"जब चित्रकूट उतरा, तब उसके पास कुछ न था। जो कुछ थोड़ा-सा सामान और रुपया-पैसा था, मानिकपुर और कर्वी के बीच जब रात को गाड़ी पहाड़ी जंगल पार कर रही थी, दूसरों की आँख बचाकर फेंक दिया। चित्रकूट पहुँच, चुल्लू से पयस्विनी का जल पीकर, एक यात्री की कृपा से नदी पार हो, हनुमद्धारा में पहले रामभक्त महावीरजी के दर्शन करने गया। पहाड़ की सीढ़ियाँ तय कर बड़े भक्ति-भाव से हनुमान्‌जी को

प्रणाम किया। पर पैसे न चढ़ाए। थे ही नहीं। गृहस्थ और पैसे न चढ़ाए। एक बाबाजी बैठे थे, गालियाँ देने लगे। चुप-चाप. कुछ देर भी विश्राम किए विना, लौटा। महावीरजी की सहायता से विश्व-सम्राट् भगवान् श्रीरामचंद्रजी से वह पैसे माँगने गया था, चढ़ाने नहीं। थका हुआ, सीढ़ियाँ उतरने लगा। सावन की सजल दिगंत तक फैली हुई श्याम शोभा राममयी हो रही थी, शीतल सुख-स्पर्श वर्षा-समीर बह रही थी, पर उसके हृदय की आग इससे और जल-जल उठने लगी। इतने जल में भी मुख सूख गया। नदी के किनारे दीन भाव से आकर खड़ा हुआ। अब की मल्लाह ने स्वयं दया की। पार उतर-कर रामकुमार कामद-गिरि की परिक्रमा करने लगा। पहाड़ पर मोरों के झुंड निर्भय नृत्य कर रहे थे। बड़े-बड़े पेड़ हवा के झोंकों से लहरा-लहराकर कह रहे थे, 'हम पूर्ण हैं, हमें कुछ भी न चाहिए।' एक जगह लोगों से उसने पूछा, 'भगवान् के इस गिरि पर क्या है?' लोगों ने कहा, 'इस पर भगवान् स्वयं रहते हैं, ऊपर एक बड़ा-सा सरोवर है, उसके किनारे उनकी कुटी है, वहीं सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ वह निरंतर तपस्या करते हुए भक्तों की मनोवांछाएँ पूरी करते रहते हैं।' रामकुमार ने आग्रह से फिर पूछा, 'वहाँ दर्शन के लिये जाने की मनाही क्यों है?' उत्तर मिला, 'वहाँ जाने से भी दर्शन नहीं हो सकते, भगवान, सरोवर, कुटी, सब लुप्त हो जाता है।' रामकुमार को बड़ा तअज्जुब हुआ। उसने निश्चय किया, लोग

दिन को नहीं चढ़ने देते, मैं रात को चढ़ूँगा। फिर वह परिक्रमा करता गया। पहले भूख और प्यास से सूख रहा था, अब इस निश्चय से, राम-दर्शन पर भर विश्वास दृढ़ हुआ, चेहरा गुलाब के फूल-जैसा खुल गया। प्राकृतिक शोभा जैसे सूचित कर रही हो, राम हैं, वह मिलेंगे। खुशी से परिक्रमा करता हुआ मंसूबे बाँधता रहा।

"परिक्रमा समाप्त कर एक मंदिर में शिव-नाम जपता हुआ उनकी कृपा की भिक्षा, जिससे रामजी के दर्शन मिल जायँ, और अपने समय की प्रतीक्षा करता रहा। सब दिनों की असफलता आज आशा में पूरी सफलता बनकर उसे अपूर्व आनंद में लहरा रही थी। रात दस बजे तक वह उसी मंदिर में बैठा रहा। जब देखा कि सब सुनसान हो गया है, तब बाहर निकला। घोर अंधकार छाया हुआ था। आकाश में सावन की घटा छाई हुई थी, हवा चल रही थी, बादल गरज रहे थे। परिक्रमा का अंत करने से कुछ पहले एक स्थान उसे ऐसा मिला, जहाँ मंदिर कम हैं, रास्ता रोकनेवाले लोगों का भय नहीं। वहीं से पहाड़ चढ़ने का उसने निश्चय किया था, उसी ओर, उल्टी परिक्रमा करता हुआ चला। घोर रात्रि-काल। मंदिरों के द्वार बंद हो चुके थे। शायद लोग भी सो चुके हों। तीव्र आकांक्षा से बढ़ता हुआ अपने स्थान पर पहुँचा। देखा, कामद-गिरि का बड़ा भयानक रूप हो रहा था। पर राजकुमार के प्राणों को चोट पहुँची थी, राम को वह प्यार करता था, उन्हीं राम ने संसार

में उसे अकेला छोड़ दिया है, प्रार्थना पर भी सहायता नहीं की। इसलिये मृत्यु भी आज तुच्छ है—सत्य का साक्षात्कार, चिरकाल के प्यारवाले राम एक तरफ़ हैं, घोर प्रकृति, दुर्ष पहाड़, अपार बाधाएँ प्राणों का मोह पैदा करती हुई एक तरफ़। पर प्राणों का मोह तो उसे होता है, जिसका संसार सुखमय, विलास की रंगशाला में परियों की पद-भूमि हो। एक बार पहाड़ की ओर गर्दन उठाकर रामकुमार ने देखा। घोर अंधकार के सिवा कुछ भी न देख पड़ा। उसके बाद नग्न गिरि की पूजा में अपने वस्त्र उतारकर पद-मूल में कर मन-ही-मन कहा—'लो, अब कुछ भी मेरे पास अपना कहने के लिये नहीं रह गया, मैं अब केवल उनसे मिलकर एक बार पूछना चाहता हूँ, मेरे पत्र का ग्रहण मेरे किस अपराध के फल-स्वरूप आपने नहीं किया ?' अर्द्ध-विक्षिप्त-सा होकर बाह्य त्याग की सीमा तक पहुँचाकर रामकुमार पहाड़ चढ़ने लगा। कमर-भर सब जगह घास उगी हुई, खड़ा पहाड़, वर्षा के जल से पत्थरों पर कहीं-कहीं काई जमी हुई, प्रति पद साँप और बिच्छुओं का भय। पर रामकुमार को कोई होश नहीं, केवल राम से मिलने की लगन लगी हुई। कुछ दूर बाद पहाड़ से एक झरना उतरा था, जल न था, वह रास्ता मिलने पर, उसी से हाथ-पैर, चारो टेककर चढ़ता गया। कुछ जाने पर थका, तो महावीरजी के देह के घी-मिले सेंदुर की सुगंध आने लगी। मन में विचार आया, महावीरजी मेरे साथ मेरी रक्षा

कर रहे हैं, फिर प्राणों को अपूर्व बल प्राप्त हो गया। फिर चढ़ने लगा। तीन चौथाई पहाड़ चढ़ गया, तब सामने पहाड़ का एक हिस्सा लटका हुआ देख पड़ा। चढ़ने का उपाय न था। बड़ा दुःख हुआ। उसी समय बिजली कौंधी। प्रकाश में कुछ पग दाहने एक पेड़ देख पड़ा, जो उस पहाड़ के लटकते हिस्से की बगल से उगकर उससे मिला हुआ तने से ही कुछ ऊँचा उठ गया था। राजकुमार उसी पेड़ पर चढ़कर उस लटकते हिस्से पर गया। अब बूँदों की वर्षा होने लगी। पर रामकुमार चढ़ता ही गया। जब कुछ और ऊपर गया, तो वैसा ही एक दूसरा, उससे कुछ और ऊँचा लटकता हिस्सा देख पड़ा। ठीक इसके बाद कामद-गिरि की चढ़ाई समाप्त थी। पर चढ़ने का कोई उपाय न था। बिजली चमकी, देखा, दूर तक पहाड़ वैसा ही खड़ा चढ़ा था, ऊपर से लटका हुआ। अब पानी भी धीरे-धीरे बरसने लगा। लाचार हो उसी लटके पहाड़ के नीचे बैठकर रोने लगा।

"कुछ देर बाद पानी बंद हो गया। उसे भय हुआ कि दिन को लोग देखेंगे, तो पकड़कर मारेंगे। रात दो-ढाई घंटे रह गई थी, तब तक पहाड़ से उतर जाने का निश्चय कर उतरने लगा। उसी तरह पहले पेड़ से होकर उतरा। फिर धीरे-धीरे घंटे-भर बाद नीचे आया। कपड़े जो उतारकर कामद-गिरि पर चढ़ा दिए थे, फिर से पहन लेने की इच्छा हुई। जहाँ उतारे थे, वहाँ देखने लगा, वहाँ कोई कपड़ा न मिला। पवनदेव न-जाने कहाँ उड़ा ले गए थे। अब बड़ी लज्जा लगी। अँधेरा अब तक है,

तब तक बस्ती छोड़कर दूर निकल जाने को जी करने लगा। वह पयस्विनी की तरफ़ चला। रास्ते में नाला छाती तक भरा हुआ मिला। वहाँ उसे मालूम हुआ, पानी ज़ोर का गिरा है। नाला पार कर पयस्विनी के तट पर गया, तो पानी के मारे सब घाट डूब गए थे। नदी का रूप भयंकर हो रहा था। जहाँ आदमी चलते थे, वहाँ कहीं-कहीं छाती से ज़्यादा पानी था। यह देखकर अजाने एक दूसरे रास्ते से चलकर सीतापुर के भीतर पैठा। जल्द-जल्द बस्ती के बाहर जा रहा था। ऊषा के क्षीण प्रकाश से अँधेरा हट चला। अभी तक लोग जगे न थे। कुछ दूर जाने पर ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाले एक यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण मिले। ब्राह्मण देवता को देखकर रामकुमार ने करुण कंठ से प्रार्थना की—'आप अपना गमछा मुझे दे दीजिए! यहाँ बस्ती है।' ब्राह्मण गला फाड़कर पुकार उठे—'चोर है! पुलिस-पुलिस!' रामकुमार धीर पद चल दिया। लोगों ने निकलकर देखा, प्रशांत अविचल नग्न युवक-साधु चला जा रहा है—उसकी चाल में चोर के लक्षण नहीं। ब्राह्मण ने कहा, 'यह मुझसे अँगोछा माँग रहा था।' लोगों ने कहा, 'मूर्ख, बस्ती के विचार से साधु ने ऐसा कहा होगा, तेरा एक अँगोछा लेकर वह क्या करेंगे? तूने बड़ा धोका खाया, डेढ़ गज़ कपड़े के तुझे थानों मिलते।'

"धीरे-धीरे रामकुमार बस्ती पार कर गया। जिधर निगाह जाती है, लक्ष्य-हीन उसी तरफ़ चला गया। दुःख, ग्लानि, क्षोभ,

क्लांति और भूख से बिलकुल मुरझा गया था। मन इतने उच्च स्तर पर था कि उसे अपने नग्न शरीर के लिये अब बिलकुल लज्जा न थी। प्रकाश फैलने के साथ ही लाज का अँधेरा भी मिट गया। सामने महुए के दो-तीन पेड़ देख पड़े, उसी ओर चला। पहुँचकर छाया में बैठते ही इतनी क्लांति बढ़ी कि लेट गया। लेटते ही बेहोश हो गया।

"जब जागा, तब दोपहर थी। देह फूल-सी हलकी हो गई थी। इतनी स्वच्छता का उसे कभी अनुभव न हुआ था। शंका आप-ही-आप पैदा हुई—'क्या भगवान् नहीं हैं ?'

"सुना ठीक मस्तक के ऊपर से आवाज आई—'हैं, हैं।'

"तअज्जुब में आ निगाह उठाकर देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ फिर 'टें-टें' कर उठा।

"संदेह से निगाह हटा ली। फिर शंका हुई, यह सब क्या है ?

"फिर ऊपर से आवाज आई—'चित्रकूट, चित्रकूट।'

"मन में उत्तर तैयार हो गया—'चित्रकूट है इसका'

"समास का ज्ञान रामकुमार को था। इस उत्तर के निकलते ही जैसे सारी पृथ्वी उसकी दृष्टि में चक्कर खाने लगी, पेड़ आदि सब घूमने लगे, घूमते-घूमते, धूमिल छाया में बदलते हुए सब आकाश में मिलने लगे। अंत में रामकुमार को कहीं कुछ न देख पड़ा। उसके देह है, यह ज्ञान भी न रहा। शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक रह गईं।

"कुछ देर बाद ज्ञान हुआ। गोस्वामी तुलसीदासजी की

जीवनी का वह अंश याद आया, जहाँ लिखा है, महावीर-रूपी तोते ने कहा है—

चित्रकूट के घाट पै भइ संतन की भीर ;
तुलसिदास चंदन घिसैं, तिलक देत रघुवीर ।

इसके बाद ही शुकदेव की याद आई ।

"मन में फिर शंका हुई, तो क्या अभी-अभी जो कुछ मैंने देखा, यही राम हैं ? फिर सुन पड़ा—हाँ-हाँ ! आँख उठाकर देखा—'टें-टें' करता हुआ सुआ उड़ गया ।

"फिर मन चिरकाल से अभ्यस्त अज्ञानवाले घर में जाना ही चाहता था कि 'उठ-उठ' की आवाज़ आई । फिरकर देखा, तो एक कठफोरा दूसरे महुए की सूखी डाल में खटाखट चोंच मार रहा था ।

"इस समय कुछ चरवाहे बालक सामने आ, हाथ जोड़कर बोले, 'महाराज, गाँव जाइए । पास ही, वह देख पड़ता है ।'

"रामकुमार उठकर खड़ा हो गया । भूख लग आई । भिक्षा की इच्छा हुई । गाँव की ओर चला । मन आज की विश्व-प्रकृति के अद्भुत सत्य-परिचय में तन्मय था, स्वभाव एक सरल बालक का बन रहा था । लज्जा लेश-मात्र न थी । घर-द्वार, पेड़-पौदे छायामय दिखाई दे रहे थे । उनका सत्य उसी के पास सिमटा हुआ था । गाँव पहुँचकर, एक द्वार पर खड़ा हो, मौन अंजलि फैला दी । उसे अब कोई आवश्यकता नहीं मालूम दी कि यह किस जातिवाले का घर है, जाँचकर भिक्षा ले । वह बाहरी दुनिया को इतना कम देख रहा था । जिसके द्वार पर

उसने हाथ फैलाया था, वह नीच जाति का मनुष्य था। उसके यहाँ किसी साधु ने भोजन-भिक्षा नहीं ली। उसके संस्कार भी ऐसे बन गए थे कि उसे भोजन देते हुए संकोच हुआ, गाँव के ऊँचे कुलवालों से डरा, प्रणाम कर भक्ति-पूर्वक उसने कहा, महाराज, आप उस तरफ़ जाइए, उधर ब्राह्मणों के मकान हैं। रामकुमार उसी तरफ़ चला। कुछ दूर पर एक आदमी बैठा था. देखकर रामकुमार ने पूर्ववत् अंजलि फैला दी।

"इसी समय, 'अरे रामकुमार ! तुम्हारा यह हाल !!' कहकर वह युवक ऊँचे स्वर से रोने लगा। अब रामकुमार का भी ध्यान उसकी तरफ़ गया। उसने देखा, युवक उसका मित्र है। जब वह पिता के साथ परदेश में रहता था, तब वहाँ यह युवक भी अपनी बहन के पास जाकर कुछ साल तक ठहरा था। दोनों घनिष्ठ मित्रता के पाश में बँध चुके थे।

"परिचय के पश्चात् रामकुमार का मन नीचे उतर चला। उसे लाज लगने लगी। युवक एक धोती आप-ही-आप ले आया, और देकर कहा कि इसे पहनकर यहीं कुछ दिन रहो, और अपने समाचार कहो। उसकी स्नेहमय मैत्री का दबाव रामकुमार हटा न सका। धोती पहनने लगा। गाँव के कुछ लोग एक टक यह स्नेह-संयोग देख रहे थे। बाद को युवक से उन्हें मालूम हुआ, यह भले घर का लिखा-पढ़ा लड़का है, भक्ति के आवेश में इसने ऐसा किया है।

"जलपान तथा भोजन समाप्त कर युवक ने अपने पिता के

स्वर्गवास का हाल तो कहा, पर वह भगवान् रामचंद्रजी से रुपया माँगने के लिये चित्रकूट आया हुआ है, और इसी उद्देश से नग्न है, यह कुछ न कहा। उसी रात को सोते हुए उसने स्वप्न देखा, उसका वही मित्र सूर्य की तरह प्रकाशवान्, श्यामलाभ, धनुर्धर साक्षात् रामचंद्र है, हँसता हुआ कह रहा है, तुमने अर्थ के लिये बड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया। इसी समय आँखें खुल गईं। देखा, उसका युवक मित्र उठ बैठा है, ठीक ब्राह्ममुहूर्त है। युवक ने कहा, रामकुमार, मैंने आज बड़ा खराब स्वप्न देखा, देखा कि तुम एक नदी तैरकर पार कर रहे हो, पर बीच धारा में पड़कर बहे जा रहे हो, तुम्हें बचाने के लिये मैं भी नदी में कूदा, तब न वहाँ पानी था, न तुम, घबराकर उठ बैठा।

"दूसरे दिन रामकुमार को कर्वी-स्टेशन पर ले जाकर उसने घर तक का टिकट कटा दिया। प्रयाग उतरकर नौकरी की तलाश में पूछताछ करता हुआ वह 'नवयुग' प्रेस में गया, वहाँ चिट्ठियाँ लिखने के लिये एक क्लर्क की आवश्यकता थी, जगह बीस रुपए की। उसकी बातचीत से मालिक को दया आ गई, उसे रख लिया।

"वहीं से उसने पढ़ना शुरू किया, और साल ही भर में एक उपन्यास लिखा, और मुफ्त छापने को दे दिया। उपन्यास की भाषा बड़ी सजीव थी। भाव बिलकुल नए। लोगों को बहुत पसंद आया। खूब बिका। नौकरी छोड़ दी। दूसरे साल

तीन उपन्यास लिखे। चार ही साल में वह उपन्यास-साहित्य की चोटी पर पहुँच गया। कई हज़ार रुपए उसने एकत्र कर लिए। सारा ऋण चुका दिया, और अब विद्या के साथ सुख-पूर्वक रहता है।

"रामकुमार का कहना है कि ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है।" हीरालाल ने कहा—"संसार के व्यवसाय में भी सूक्ष्म अर्थ ही स्थूल अर्थ पैदा होने का कारण है।"

फिर दिनेश की ओर देखकर पूछा—"अच्छा, तोते की जगह आपको विश्वास होता है?"

"मुझे कुल आत्मकथा पर विश्वास है।" दिनेश ने उत्तर दिया।

"तो रामकुमार की तरह आपको भी हिंदू-धर्म के गपोड़ों पर विश्वास करने की आदत है।"

"नहीं, इसलिये नहीं, बल्कि रामकुमार—"

छूटते ही हीरालाल ने पूछा—"रामकुमार आप ही हैं?"

"नहीं, रामकुमार को वस्त्र देनेवाला उसका मित्र।"

प्रेमिका-परिचय

(१)

बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी० ए० क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अँगरेजी हुकूमत में बदल गई है, पर उन्हें बादशाह-बाग़ की ही हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और बुलबुल के परिस्तान में पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू-शायरी का अज़हद शौक़, इश्क़ का नाज़ उठाते हुए चलते, पलकों पर एक सदी पहले का स्वप्न। उर्दू के ख़ुद भी कुछ अशआर लिखे हैं, कभी-कभी हौज़ की बग़ल में बैठकर पढ़ते हैं। होस्टल के मुशायरों में सबसे ज़्यादा चंदा देते, हिंदी के ज्ञान में अक्षर-परिचय भर, पत्रिका में शेर खोज-खोजकर पढ़ते हैं। तारीफ़ उसी पत्रिका की करते हैं, जो हिंदी-अक्षरों में उर्दू के शेर छापती है। मीर, ग़ालिब, ज़ौक़ आदि के दीवान-के-दीवान बरज़बान याद, दाग़ को उस्ताद मानते हैं। होस्टल के छात्र उन्हें नव्वाब साहब कहते हैं। यों वहाँ दो-एक को छोड़कर सभी नव्वाब हैं, पर एक दर्जे में पाँच साल फ़ेल होकर शिकस्त न खानेवाले बाबू प्रेमकुमार इज़्ज़त की सल्तनत में बढ़ गए हैं। घर के अमीर हैं, कहते हैं, तहज़ीब सीखने के लिये लखनऊ

आए थे, चौक इसी मतलब से जाया करते हैं, इसीलिये किताबों को तलाक़ दे दिया है। सर में ऐंगल-कट इँगलिश-फ़ैशन बाल, पैरों में बूट, आज के यही दो चिह्न; बाक़ी अचकन, पाजामा, टोपी, चाल-ढाल और गुलाबी उर्दू हिंदोस्तानी एकेडेमी की नेशनल ड्रेस और लिंगुआ-इंडिका से चस्पाँ होती हुई। अँगरेज़ी बंदरगाहों से दोस्तों को नव्वाबी गुलिस्तानों में लाकर छोड़ते और हर तरह हवा खिलाकर क़बूल करा लेते हैं कि सिवा नव्वाबी सभ्यता के चिकारे के विश्व-सभ्यता का कोई भी बाजा मनुष्य के गले से हूबहू नहीं मिल सकता, अँगरेज़ी कार्नेट तो गधे की धुधकार है। ऐसे गुणों से बाबू प्रेमकुमार छात्रों की आँख-आँख पर रहते, गले-गले से फिरते हैं। ख़ास बात यह कि क्लास की छात्राओं से, निषेध की ऊँची चारदीवार छायावादी ढंग से अनायास पार कर, प्राय: मौनालाप किया करते हैं, लिहाज़ा विद्यार्थी प्रतिक्षण इनकी तरफ़ देखने से विरत नहीं होते। छात्राओं की निश्चल मौन दृष्टि में छात्रगण अनेक प्रकार की चपलता सोच लेते हैं, और ख़ुद-ब-ख़ुद बातचीत के कच्चे सूत से बाबू प्रेमकुमार को मज़बूत बाँध देते हैं।

हॉस्टल में प्रेमकुमार की बग़ल में शंकर का रूम है। शंकर ब्राह्मण का लड़का है, अँगरेज़ी पढ़ता हुआ भी पीढ़ियों के संस्कारों की पूरी रक्षा करनेवाला। साबुन और सुरती का कारख़ाना खोलकर पिता ने कई लाख रुपए पैदा किए हैं। पुत्र को धर्म-रक्षा के साथ अँगरेज़ी-शिक्षा प्राप्त करने को

लखनऊ भेजा है। सुयोग्य पुत्र पिता की ही तरह धर्म की रक्षा में जितना पटु, खर्च में उतना ही कटु है। पीछे पूँछ-सी मोटी चोटी, कई पेंच के बाद बाँधने में एक कौशल, खोलने पर बाल बल खाते हुए। कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिज़र्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीक़ा है। एक समय वह प्रेमकुमार के साथ था। अब दो साल आगे, फ़ाइनल एम्० ए० में है। तीन साल से बाबू प्रेमकुमार इसे अपने रास्ते पर सभ्य करने का परिश्रम कर रहे हैं, पर यह अब तक सूरदास की काली काँवर सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार बाबू प्रेमकुमार मुसलमान-सभ्यता के ऊँचे फाटक से आदमियों के साथ जानवरों को निकालते रहते हैं, उसी प्रकार शंकर आर्य-सभ्यता के संकीर्ण दरवाज़े के भीतर ब्राह्मणों के सिवा दूसरी जाति को नहीं पैठने देता।

इसी विरोधी गुण के कारण प्रेमकुमार प्रायः उससे अपने प्रेम की बातें कहा करते हैं। मतलब, कब उसे पिघलाकर अपने रास्ते वहाँ ले जायँ। मौसिम बदलने तक प्रेमकुमार की दो-तीन रंगीन प्रेम की घटनाएँ बदल चुकती हैं, तब तक वह बराबर अपना मालकोस गाकर शंकर की शिला में बैजूबावरे के हाथ में मंजीरे छोड़ना चाहते हैं। नैसर्गिक प्रकृति से प्रेमकुमार की भौतिक प्रकृति-चर्चा में शंकर को अधिक रस मिलने लगा, क्योंकि यह और भी शीघ्र बदलनेवाली, और भी आकर्षक, मनुष्य के स्वभाव के और भी निकट है, पर उसकी

ओर चलने की शंकर को हिम्मत नहीं होती, क्योंकि धर्म-भीरुता ने उसे वास्तव में भीरु बना दिया है। जब प्रेमकुमार सुनाते हैं—"आज मिस 'सी' ने सिकंदर-बाग़ में बुलाया था। क्या करूँ, किसी का न्योता टाल तो सकता नहीं, जाना पड़ा, भई जान देती हैं। पूछने लगीं. कहो, तुम हमेशा के लिये हमारे हो ? कहना पड़ा। अब ऐसा प्यार ठुकराया तो जाता नहीं। फिर क्या कहूँ कि क्या-क्या बातें हुईं। वहाँ से हम लोग कार्लटन होटल गए; खाया-पिया, मौज से बारह बजे तक रहे।" सुनकर शंकर चलते मूसल से ऊखल की दशा को प्राप्त होता है, तत्काल वासना वशीभूत कर लेती है। पर पिता की बात, जात जाने का भय, हृत्कंप पैदा कर बढ़ने से रोक लेते हैं। जब तक वह अपनी बिगड़ी दशा को राम-नाम जपकर सुधारता है, तब तक बाबू प्रेमकुमार अपनी दूसरी घटना उसके सर पटक देते हैं—"कल मिस लीलावती का पत्र मिला था। लखनऊ में उससे ख़ूबसूरत कोई नहीं, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। क्या ग़ज़ब की आँखें हैं! देखती क्या है, पार कर जाती है। रात आठ बजे विक्टोरिया-पार्क में मिलने के लिये बुलाया था। देखो, यह सब इस चेहरे की करामात है। दुनिया में कामयाबी हासिल करना चाहते हो, तो पहले चेहरा सुधारो। मैं कहता हूँ, तुम जैसे मनहूस, मुहर्रमी सूरत बनाए फिरते हो, तुम्हारी बीवी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती। यह चेहरा ही प्यार करनेवाला नहीं। हाँ, फिर लीलावती से बड़ी दूर तक

मंजिल तय हुई।" शंकर की नसों का खून फिर तेज बह चलता है। बेचारा पलकें दबाकर, रीढ़ सीधी कर सँभलता और दस-पाँच दिन बिगड़े हुए मन को सुधारता है, तब तक एक फिर नई खबर आ पहुँचती है। इसी तरह उसने तीन साल पार किए। पतिव्रता स्त्रियों के तीसरे कोठे से चौथे तक उतरने की कभी उसे हिम्मत नहीं हुई। सिर्फ एक दफ़ा आज़मायश की थी।

प्रेमकुमार धीरे-धीरे प्रेमिका-परिचय में सूक्ष्म से स्थूल होने लगे। पहले केवल अपने व्याख्यान के प्रभाव से खींचने के उद्योग में थे, अब अपने नैसर्गिक सुख के लिखे प्रमाण भी पेश करने लगे।

शंकर उनसे सुन चुका था, किस तरह कुमारियों तथा महिलाओं से आँखें मिलाकर बातचीत की जाती है; आवाज़ कहाँ तक शिष्ट और अलफ़ाज़ कैसे-कैसे, कौन-कौन-से खास तौर से प्रयोग में आते हैं। एक रोज एकांत में अपने ही क्लास की एक छात्रा से आज़मायश के लिये उतरकर बुरी तरह फ़ेल हुआ। इसके एक संबोधन-मात्र से जो आग उसकी आँख से निकली, फिर रस्टिकेटेड होने के डर से इसने किसी मिस की तरफ़ आँख नहीं उठाई।

(२)

आज एक पत्र लेकर फड़कते हुए प्रेमकुमार शंकर से मिले, और लिफ़ाफ़ा-सहित शंकर के पास बिस्तरे पर फेंककर

काशिनाथ

कहा—"देखो, क्या लिखा है !" शंकर उठाकर पढ़ने लगा। अँगरेज़ी में पत्र यों लिखा है—

मेरे प्रिय प्रेमकुमार,

आज कितने दिनों से कॉलेज जाती हूँ, तो एक बार तुम्हें अवश्य देखती हूँ। नहीं देखती, तो दिल की आग नहीं बुझती। पर तुम, तुम कितने कठोर हो, मेरी तरफ़ भूलकर भी नहीं देखते ! ईश्वर ने तुम्हें यह रूप मुझे जलाने के लिये दिया था। जो चीज़ अपनी नहीं, मैं उसे चाहती हूँ। तुम हँसोगे। न हँसो, यह मेरे भाग्य होंगे। पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलानेवाली आग तुम मुझे दोगे ? ज़रूर दो, ज़रूर दो, प्यारे, मैं कुछ भी तुमसे इस नश्वर संसार में नहीं चाहती, सिर्फ़ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलानेवाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे सामने ही किस तरह जलकर राख हो जाती हूँ। प्यारे, अब यह हाथ जवाब दे रहा है, आँसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूँ ? क्या एक बार, बस एक बार के तुम मेरे प्यासे दृगों को तृप्त करने के लिये कल शाम बनारसी-बाग़ में मुझे मिलोगे ? तुम्हारा हमेशा, हमेशा के लिये दिल से आभार मानूँगी—उफ़् !

५, हिवेट रोड
लखनऊ
३-४-३२

तुम्हें न मिल सकनेवाली
तुम्हारी शांति

पत्र को बड़े ग़ौर से शंकर ने कई बार साद्यंत पढ़कर कहा—"भई, है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार !"

"है न ?" गर्व-पूर्वक प्रेमकुमार ने सर उठाकर कहा—"तुमसे मैं कई बार कह चुका कि और कुछ नहीं, तो ज़रा अपना चेहरा भले आदमी की तरह सुधार लो, पर तुम पूरे गँवार ही रहे।"

"लेकिन कहाँ इसने तुम्हें देखा होगा ? मुझे तो कभी-कभी बड़ा तअज्जुब-सा लगता है।"

"कहाँ देखा होगा ! मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहीं-वहीं से कहीं देखा होगा, फिर कुछ दूर चलकर, ख़ुद ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को पता पूछ आने के लिये कह दिया होगा।"

"अच्छा ! ऐसा भी होता है ?"

"अरे मूर्ख ! लखनऊ है। फिर जब दिल की लगती है, तब दिल के ख़ुदा रास्ता भी बंदे को बता देते हैं। मुमकिन, दूसरी तरह पता लगाया हो। किसी गर्ल्स-कॉलेज की लड़की जान पड़ती है। कॉलेज की लड़कियों में मेरी पहचान काफ़ी है।"

"लेकिन हरएक तुम्हीं से स्वयंवरा होती है !"

"मुझसे नहीं, देखो, इधर देखो, इस रूप से होती है; यह शाही शान लखनऊ में दूसरी जगह न पाओगे।"

बाबू प्रेमकुमार की तरफ़ एक बार देखकर शंकर ख़ूब प्रसन्न होकर हँसा। प्रेमकुमार कायस्थ हैं। बाल और चेहरे के रंग में बहुत थोड़ा-सा फ़र्क़ है। तेल, साबुन, पाउडर और सेफ़्टी रेज़र की दैनिक रगड़ से मुँह का तो मैल छुट गया है, पर चमड़े का स्याह रंग वार्निशशुदा बूट की तरह और चमकीला

हो गया है। काले रंग पर पाउडर की सफ़ेदी देखनेवालों की आँखों में ग़ज़ब ढाती है।

"तुम हँसते क्यों हो?" नाराज़ होकर प्रेमकुमार ने पूछा।

"इसलिये कि तुम जो कुछ कह रहे हो, इसमें कहीं तिल रखने की भी जगह नहीं। तो क्या जाओगे ही?"

"जाना मेरा फ़र्ज़ है। प्यारवाले कलेजे मोम से भी मुलायम होते हैं, ज़रा-सी आँच नहीं सह सकते, पिघलकर ख़त्म हो जाते हैं। तुम्हें इसका कुछ पता तो है ही नहीं।"

"ठीक कहते हो। मुझे कहीं से ऐसा न्योता आ जाय, तो पहले तो जाने की हिम्मत न हो, अगर जी कड़ा करके जाऊँ, तो मिलने के वक़्त भगवान् जाने क्या हो। सरस्वतीदेवी शायद ही जीभ तक पहुँच सकें।"

प्रेमकुमार हँसने लगे। बोले—"Face is the index of mind (चेहरा मन का सूचीपत्र है)। तुम्हें कहीं से न्योता मिल भी नहीं सकता। तुम ज़रा यह ब्राह्मणों की पोंगापंथी छोड़ो, तो कुछ दिनों में तुम्हें आदमियों से मिलने लायक़ बना दूँ।"

(३)

शाम को बनारसी-बाग़ में, एक तरफ़ ताँगा खड़ा कर, हिरन, गैंडा, चीते, शेर, चिड़िया, शुतुरमुर्ग़, कँगारू, बाघ, भालू, भेड़िए, गधा और ज़ेब्रा आदि के घेरे-घेरे, पिंजड़े-पिंजड़े प्रेमकुमार चक्कर मारते रहे। प्रिया को वह ख़ुद पहचाननेवाले नहीं, प्रिया द्वारा पहचाने जानेवाले हैं, इसलिये जो भी हसीन, नवीन

साड़ी में लिपटी, लपट-सी उठती, उनकी तरफ़ आती हुई देख पड़ती है, पूरे ताव से दो-एक क़दम उसकी तरफ़ बढ़ जाते हैं। बस, उसके साथ की सखी या आदमियों की आलोचना पहुँचती है—"कैसा अहमक़ है, अंधा कहीं का।" बस, पैर रुक जाते, आशा दूसरी तरफ़ फेर देती है। पूरे चार घंटे तक बाग़ में चक्कर लगाते रहे। दो-तीन बार ताँगेवाला आ-आकर, पूछ-पूछकर लौट गया। जहाँ कहीं बैठा महिलाएँ बातचीत करती हुई देख पड़ीं, यह देर तक उनके चारों तरफ़ कावे लगाते रहे। धीरे-धीरे बाग़ निर्जन हो गया। यह फिर भी बारहदरी के चारों ओर टहलते रहे। शांति न मिली। शांति खोकर शिथिल-देह ताँगे पर आकर बैठे, और हॉस्टल आ चुपचाप लेट रहे।

दूसरे दिन शंकर ने ख़बर लेने की ग़रज़ से आकर कमरे में प्रेमकुमार को मुरझाए बैठे हुए देखा। यह प्रेमकुमार के प्रेम का ख़ुमार न हो, ऐसा ख़याल कर चेहरे की तरफ़ तारीफ़ की निगाह से देखते हुए पूछा—"क्यों भई, कल पहली पहचान-वाली शाम अच्छी तो कटी?" पूछकर बग़ल में बैठ गया।

"हिंदोस्तानी सबसे पहले इसीलिए बदनाम हैं कि वादे के हज़ार पीछे दो भी पक्के नहीं निकलते। तभी तो गले से ग़ुलामी छूटती नहीं। ऐसी-ऐसी गंदी आदतवाले अगर चाहें कि अपना सुधार सामाजिक या राजनीतिक कर लें, तो क्या ख़ाक करेंगे?" झुँझलाए हुए प्रेमकुमार बोले।

"तो कहो, कल वादा-खिलाफ़ी रही। मैं तो पहले से तुम्हें सचेत कर रहा था कि कहीं किसी ने मज़ाक़ न किया हो। पर तुम भी ऐरे-ग़ैरे नत्थू-खैरे सबको युधिष्ठिर का अवतार समझ लेते हो।"

"मेरी आदत है, मैं अपनी तरह दूसरे को भी तहज़ीब-पसंद भला आदमी मान लेता हूँ। और लखनऊ में, ख़ासकर पढ़ी-लिखी लड़कियों में ऐसी बेहूदा भी रह सकती हैं, मैं क़यास में नहीं ला सकता।"

पूरी गुस्ताख़ी की निगाह देखते हुए शंकर ने कहा—"तब तो बड़ा धोका हुआ। सारा मज़ा किरकिरा कर दिया!"

सामने चिट्ठीरसा आता हुआ देख पड़ा। प्रेमकुमार उसी पर दृष्टि जमाए हुए थे। वह भी उन्हीं की तरफ़ बढ़ रहा था। पास आ एक लिफ़ाफ़ा दिया। खोलकर पढ़कर प्रेमकुमार प्रसन्न हो गए। कहा—"देखो, हम लोग ग़लती में थे। देखो, कितनी अच्छी साफ़ दिल की तस्वीर है।"

शंकर चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा। लिखा है—

प्राणेश प्रेम,

तुम मेरे लिये कल कितने परेशान थे! जब जानवरों के घेरे-घेरे घूमते हुए अपनी शांति की खोज में व्याकुल हो रहे थे, तब मैं अपनी मा के साथ बैंड-स्टैंड के सामनेवाले मैदान में खड़ी उधर से तुम्हें जाते हुए देखकर हँस रही थी। जी चाहता था, दौड़कर तुम्हारी शांति का पता दे दूँ, और पहले

पता बताने का पुरस्कार तुमसे क़बूल करवा लूँ, पर मेरी मा साथ थीं, इसलिये तुमसे मिल नहीं सकती थी। पर क्या तुम इतना सोच ले सकोगे कि मैं कितनी बार, कितनी तरह, आँखों से, दिल से, गले से और प्यार से तुमसे मिल चुकी हूँ ? मैं वही हूँ, जिसे देखकर तुम चौंके थे, मेरी मौन पुकार सुनकर, मुझे देखकर खड़े हो गए थे, फिर उदास होकर चले गए थे। तुम समझो कि अपनी चाहनेवाली के दिल में कितनी आग तुम फूँक गए हो। वह अपने प्यारे के असली प्रेम की परीक्षा कर न मिल सकने के कारण कितना तड़प रही है ! आह ! तुम्हें इतना कष्ट अपनी शांति के लिये स्वीकार करना पड़ा ! पर शांति तुम्हें मिलेगी। वह तुम्हारे ही पास रहती है। तुमसे जुदा हो जाय, तो उसकी हस्ती मिट जाय। तुम्हें अवश्य-अवश्य तुम्हारी शांति मिलेगी। कल एलफ़िंस्टन-सिनेमा ज़रूर-ज़रूर आने की कृपा करना।

हिवेट रोड, लखनऊ ४-४-३२	तुम्हारी शांति

मुस्किराकर शंकर ने कहा—"यार, इनके पत्र में तो पूरी कविता रहती है !"

"हाँ, काफ़ी पढ़ी-लिखी जान पड़ती हैं। अँगरेज़ी बड़े काट की लिखती हैं।" आत्मगौरव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए प्रेमकुमार ने कहा—"जब मा साथ हों, तब कैसे कोई खुले दिल से बातचीत करे !"

"ऊँचे किसी ख़ानदान की जान पड़ती हैं !" शंकर ने बढ़ाकर कहा।

"ज़रूर, यह काट-छाँट किसी फटीचर घर की लड़की की हो ही नहीं सकती। ख़ानदानी घर की लड़की की मिसाल दूब से दी जाती है, जो बारह साल धूप में झुलसती रहने पर भी दिल से गीली रहती है। इसीलिये जान से बची रहती है। किसी ने ज़रा-सा पानी डाला, या आसमान से चार बूँदें पड़ीं कि चौगुनी हरियाली से लहरा-लहराकर पानी डालनेवाले की तारीफ़ करती रहती है। इस तरह उसकी आँख ठंडी कर फ़ौरन् बदला चुका देती है।"

"बहुत दुरुस्त कहते हो। क्या सिनेमा जाने का विचार है ?" आग्रह ज़ाहिर करते हुए शंकर ने पूछा।

"न जाने की क्या बात हुई ? अगर न्योता और वह भी भले घर का, किसी को मिले, और वह न जाय, तो उससे बड़ी मेरे ख़याल से दुनिया में दूसरी बेहूदगी है ही नहीं।" आईने को सामने की मेज़ पर रखकर सेफ़्टी रेज़र में नया ब्लेड लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा।

"चाहिए ज़रूर जाना। तबियत मेरी भी होती है कि जब तुम मिल लो, तब एक बार उनके दर्शन करूँ। अँगरेज़ी में कविता ज़रूर लिखती होंगी।"

"हाँ, दिल एक सच्चे शायर का है। हर सेंटेंस चोट करता है, है न ?"

"करारी; चोट तुम पर है, तड़प मुझे हो चली है!"

"कोई लफ़्ज़ निकाल दो, तो सारा मज़मून लँगड़ा।" दाढ़ी में साबुन लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा—"मैं मिल लूँ, फिर वादा करता हूँ, तुम्हें ज़रूर मिला दूँगा। इसी तरह धीरे-धीरे भले आदमी बन जाओ। अब ज़माना ब्राह्मणोंवाले ख़यालात से बहुत दूर बढ़ गया है। तुम बाक़ायदा पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ अपनी तरफ़ से भी समझो। और, मैं तो पहले मिलने-जुलने की आज़ादी मानता हूँ, फिर और।"

(४)

छ का समय है। एलफ़िस्टन-पिक्चर-पैलेस के सामने लोगों की भीड़ है। 'शैलबाला'-फ़िल्म ज़ोरों से चल रही है। चवन्नी और अठन्नीवाले झरोखे में लखनऊ के पानवाले, हिंदू-मुसलमानों के, आवारागर्द नौजवान लड़के और ग़रीब बाशिंदे एक दूसरे पर चढ़े हुए टिकट के लिये बढ़ते जा रहे हैं। कई प्राइवेट मोटरें आकर लगी हैं। प्रेमकुमार बड़ी देर तक इधर-उधर टहलते रहे। कुछ देर तक तस्वीरें आजवाली और आगे होनेवाली फ़िल्मों की, सुलोचना, ज़ुबेदा, माधुरी, कज्जन, मुश्तरी, शीला, कूपर और मुख़्तार बेगम आदि की देखते रहे, यद्यपि इन सबके चित्र उनके कमरे में बड़ी हिफ़ाज़त से रक्खे हैं, और ज़ुबेदा की एक तस्वीर बड़े ख़र्च से, सुनहले बार्डर में, आईने की तरह टेकदार, बँधवाकर मेज़ पर रख दी है। वहाँ तस्वीरों के पास रहने का ख़ास मतलब यह है कि शांति आवेगी

तो जाने के समय मुलाक़ात हो जायगी, और मालूम भी हो जायगा कि वह किस दर्जे में गई। अभी से टिकट खरीदकर कहीं जाकर बैठना बेवक़ूफ़ी होगी। कहीं उस दर्जे में शांति न मिली, न गई, तो ? कोई भी प्रवीण नवीन पत्नी का हाथ पकड़े उधर से गुज़रता है, तो प्रेमकुमार उन्हें शांति और उसका बाप समझकर प्रेम से सिहर उठते हैं, फिर तरुणी की जलती दृष्टि से मौन लांछन पा रह जाते और दूसरे वार की प्रतीक्षा करते हैं।

समय केवल दो मिनट खेल शुरू होने का रह गया, तब बहुत घबराए। निश्चय हुआ कि शांति उनके आने से पहले भीतर चली गई, और अतृप्त आँखों से उनकी राह देखती होगी। बड़े बेचैन हुए। कहाँ, किस दर्जे में जायँ, कुछ ठीक नहीं हो रहा। कहाँ वह बैठी उनके नाम की माला जप रही है, कैसे मालूम करें। अत मैं, बाहर रहने से भीतर रहना अच्छा। इस विचार से अपना लाइब्रेरीवाला कार्ड दिखलाकर ऊपर का टिकट कंसेशन से ले लिया। जाते-जाते बत्ती भी बुझ गई, खेल शुरू हो गया। इच्छा थी, ऊपर और जहाँ तक नज़र जायगी, शांति को उजाले में खोजेंगे। दिल बैठ गया।

खेल शुरू हो गया। प्रेमकुमार की घबराहट बढ़ चली। लोग एकाग्र होकर तमाशा देख रहे हैं। प्रेमकुमार चित्त की अपलक आँखों से शून्य शांति का ध्यान कर रहे हैं, उसकी बातें सोच रहे हैं—"उसने लिखा है, मैंने तुम्हें देखा है; तुमने

भी मुझे देखा है। सबसे ज्यादा मैं किसकी तरफ़ खिंचा था ! क्या वही है—वह गोरी-गोरी लड़की ! पर उधर से तो शायद किसी बेहूदे की दी गाली की आवाज़ आई थी, किसी कम-बख़्त ने यों ही छेड़ दिया होगा।"

खेल को एक घंटा हो गया। पर प्रेमकुमार को मालूम नहीं कि क्या-क्या हो गया। केवल शांति के ध्यान में तन्मय हैं।

घंटी बजी। हाफ़ टाइम हुआ। बत्तियाँ जल गईं। प्रकाश में ऊपर-नीचे, कई जगह, सुंदरी-से-सुंदरी युवतियों को बैठे हुए देखा। पर ऐसी हालत में कहाँ जायँ ? किसे शांति समझें ? जो सबसे ख़ूबसूरत है। ग़ौर से देखने लगे। जिससे निगाह लिपट जाती, प्रकाश में उज्ज्वल आँखें, कोट, कट, चिबुक, मुख उसी के अपूर्व सुंदर लगते हैं। जब जिसे देखते, तब उसे ही शांति समझने लगते हैं। कैसी विपत्ति है ! इतनी युव-तियों में कौन सबसे सुंदरी है, निर्णय करने में मन सक्षम नहीं। जितनी हैं, उतने रूप के मुख हैं—गोल, लंबे, चकले, सम, सभी सुंदर हैं, सभी निर्दोष। इनमें शांति कौन हो सकती है ?

मेहनत करते-करते मन थक गया। रूपों को देखते रहने के लिये वह राज़ी है, पर शांति के निर्णय के लिये पूर्ण श्रांत। उसने युक्ति दी—"इन्हीं में शांति होगी। हर स्त्री अपने ही रूप को सबसे सुंदर समझती है। यदि वह वास्तव में रूपवती है भी ; इसलिये खेल समाप्त होने पर रास्ते पर हरएक को देख लेना।"

खेल समाप्त हुआ। रास्ते पर आ प्रेमकुमार ठाट से टहलने लगे। उन्हें शांति न मिली। जितनी शांतियाँ अपने पति को हाथ से पकड़े हँसती हुई शैलबाला की आलोचना में मुखर उधर से निकलीं, सभी बाबू प्रेमकुमार को जला-जलाकर चली गईं।

हताश होकर भी आशा के क्षीण-क्षणिक आश्वासन से हृदय को बाँधकर प्रेमकुमार एक ताँगे पर आ बैठे, और बादशाह-बाग़ चलने के लिये कहा।

प्राणों की प्रेयसी प्रतिमा को पुनः-पुनः दैत्यों के वीर भाव से अणुओं में चूर्ण करने लगे, और वह उन्हीं के प्राणों से शक्ति ग्रहण कर-कर परमाणुओं से सुंदर रूप-बंध में गठित हो-हो—आज की उन्हीं रूपसियों के चेहरे-चेहरे से, जिन्हें वे अच्छी तरह कुछ देर पहले देख चुके हैं, जो कुछ देर पहले उन्हें आँखों की दृष्टि में लांछित कर चुकी हैं—माया-मरीचिका में आँखों की दृष्टि हर-हर, शांति के रूप में उठ-उठ लुभाने लगीं।

निरुपाय प्रेमकुमार होस्टल आ, किराया चुकाकर, चुपचाप अपने कमरे में चले गए। शंकर पढ़ रहा था, पर अभी चलकर बातचीत करना उसने ठीक न समझा।

(५)

सुबह भी शंकर समय बरबाद होने के विचार से प्रेमकुमार से नहीं मिला। उधर प्रेमकुमार भी चिंताजनक मानसिक स्थिति के कारण सुबह शंकर से आकर नहीं मिल सके।

कॉलेज से लौटकर बाहर से शंकर ने आहट ली। प्रेम-

कुमार प्रसन्न थे। एक ग़ज़ल मन-ही-मन गुनगुना रहे थे। इस ग़ज़ल को कैनिंग कॉलेज के विद्यार्थी लखनऊ का नैशनल सॉंग (जातीय गीत) कहते हैं। ग़ज़ल है—

"अगर क़िस्मत से लैला के गले का हार हो जाता,
ज़माने-भर की नज़रों में खटकता, ख़ार हो जाता।"

आदि-आदि।

शंकर को मालूम हो गया कि या तो कल इनकी क़िस्मत दरअस्ल लड़ गई, या आज अब फिर चिट्ठी में कल कहीं मिलने की आज्ञा पहुँची है। मुस्किराता हुआ भीतर गया, और बड़ी उत्सुकता से पूछा—"क्यों भई, कल मुलाक़ात तो हो गई?"

"किसी ने ठीक कहा है!" प्रेमकुमार बोले—"जो मज़ा इंतज़ार में पाया, वह वस्ल में न पाया।"

"तो क्या अभी इंतज़ार हो चल रहा है?" कुछ तअज्जुब से शंकर ने पूछा।

"बात यह हुई कि कल मैं पहले शो में गया, वह दूसरे में आईं। इसीलिये मुलाक़ात न हो सकी। बड़ा ताना देकर चिट्ठी लिखी है। देखो।"

प्रेमकुमार ने चिट्ठी बढ़ा दी, शंकर पढ़ने लगा। लिखा है—

प्यारे प्रेम,

कल दूसरे शो में मैं गई, पर तुम नहीं थे। यह कैसी बात! क्या तुम मुझसे नाराज़ हो गए? मुझे क्षमा करना। तुम्हीं सोचो,

मेरा क्या क़सूर था ? अगर तुम पहले शो में आए, तो ग़लती की। भला, पहले शो में भी कहीं दिल मिलानेवाले मिल सकते हैं ? जब तक सिनेमा होता, हम लोग गोमती के किनारे बात-चीत करते ; फिर सिनेमा ख़त्म होने पर मैं घर चली जाती। पहले शो में यह मौक़ा शहर की भीड़ में कहाँ मिलता है ? अगर पहले शो में तुम गए, तो ज़रूर चुड़ैलों को देखकर मेरा अंदाज़ा लगाया होगा, इस तरह तुमने मेरा कितना अपमान किया ! अब कल का वादा पूरा होना ही चाहिए। कल गोमती के किनारे, छोटेलाल के पुल पर छत्री में रहना। मैं नहाने जाऊँगी। तब तुम मुझे दिन को देखकर फिर रात को न भूल सकोगे। फिर हम लोग किसी दिन कहीं मिल जायँगे। कल ज़रूर-ज़रूर तुम्हें तुम्हारी शांति मिलेगी। ठीक आठ बजे दिन को मैं ज़नाने घाट पर हूँगी।

५, ह्विवेट रोड
लखनऊ
५-४-३२
रात एक

तुम्हारी कब से खोई हुई
शांति

पढ़कर शंकर की तबियत फड़क उठी। कहा—"अब क्या, अब तो कल ज़रूर क़िस्मत खुल जायगी।"

"एक-न-एक ऐसा अड़ंगा लग जाता है कि बना-बनाया काम बिगड़ जाता है।" सहज प्रसन्न स्वर से प्रेमकुमार बोले।

"पहले की अड़चन अच्छी होती है। पीछे की सफलता तब बड़ी, स्वाददार जान पड़ती है। प्रेम के लिये तो यह ख़ास

बात होगी। मुझे कल्पना से इसका ठोस आनंद कुछ-कुछ मिल रहा है।" शंकर ने चिट्ठी की तरफ़ देखकर कहा।

"कल्पना नहीं, खरबूजे-सा अपना भी हाल समझो। रोज़ साथ किसका होता है ? यह उसी का रंग चढ़ रहा है, जो तजवीज़ इतनी चोखी उतर रही है।" प्रेमकुमार ने आत्मप्रसाद के उदात्त भावों से कहा।

"पके ख़रबूजे को स्यारों से बड़ा डर है।"

(६)

दूसरे दिन पाँच बजे प्रात: नहाकर, पूरा शृंगार कर, प्रेमकुमार छड़ी लेकर छोटेलाल के पुल की ओर, ठीक छ बजे, चल दिए। आठ बजे तक घाट की ओर टहलते, छत्री पर उठते-बैठते रहे। आठ बज गए, नौ बज गए, दस बज गए, किसी ने भी उनसे आकर न कहा, प्यारे, तुम इतने परेशान हो मेरे लिये, मैं ही तुम्हारी शांति हूँ। बल्कि एक अज्ञात मनुष्य ने पूरी उद्दंडता से पेश आकर कहा—"आप बड़ी देर से यहाँ टहल रहे हैं, और मैं देखता हूँ, जो भी औरत आती है, आप बुरी तरह घूरते हैं, क्या आपको इस तरह नजर लड़ाते वक्त अपनी मा-बहनों की बिलकुल याद नहीं आती ?"

पाप बड़ा डरपोक होता है। कुछ जवाब दें, प्रेमकुमार को ऐसी हिम्मत न हुई। चेहरा उतर गया। चुपचाप सीढ़ियों से चढ़कर बादशाह-बाग़ की राह ली। होस्टल में जाकर लेट रहे। उस रोज़ खाना न खाया।

वक्त पर चिट्ठीरसा फिर चिट्ठी लेकर पहुँचा। प्रेमकुमार मन-ही-मन शांति को शास्ति देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रहे थे, उसी समय उसने एक चिट्ठी इन्हें दी। लेकर पढ़ने लगे। लिखा है—

मूर्खाधिराज,

तुम्हें गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नहीं मिला ?

५, हिवेट रोड
लखनऊ

तुम्हारी
शांति

पढ़कर प्रेमकुमार के छक्के छूट गए। कुछ देर बाद शंकर भी आया। पत्र वैसा ही खुला मेज़ पर पड़ा था, पढ़ लिया। फिर हँसी को पीकर बोला—"यार, यह तो अच्छा मज़ाक़ किसी ने किया। अब ५ हिवेट रोड पर चलकर देखो तो, कौन रहता है।"

हिवेट रोड पर इन्हीं की नई ब्याह कर आई हुई साली अपने अकेले पति के साथ रहती है, जो इन्हीं के कॉलेज में पहले इन्हीं के साथ रहकर अब रिसर्च-स्कॉलर है। इन्हें देखकर क्षमा हँसने लगी। कहा—"आप बड़े बेवक़ूफ़ हैं, शांति तो दीदी का ही राशि का नाम है।"

परिवर्तन

(१)

परी सात साल की थी, और सूरज दस साल का। दोनो धूप-छाँह-से हिले-मिले रहते थे। परी की आदत थी आज्ञा करने की—"वह फूल तोड़ दो, वह फल चढ़कर गिरा दो।" सूरज की आदत थी उसी समय उसे पूरा करने की।

एक दिन, नज़रबाग़वाले तालाब में कमल खिले थे, एक बड़ा-सा अधखिला उन्हीं के बीच में था, परी ने कहा—"वह बीचवाला लाल-लाल बड़ा-सा कमल ला दो सूरज!" सूरज कूद पड़ा। तैरता, नालों को चीरता हुआ कमल को तोड़ तो लिया, पर लेकर निकल न सका। पैर मृणालों में फँस गए। परी को देने को स्नेह-फूल हाथ से न छोड़ा, पैरों को पटक-पटककर नालों की उलझन छुड़ाता रहा। तट पर खड़ी लालसा की दृष्टि से फूल को देख-देखकर साग्रह हाथ फैलाती हुई परी हँस रही थी। थककर कमल लिए हुए सूरज एकाएक डूब गया।

परी दौड़ती हुई कोठे पर मा के पास गई, और हाँफती हुई बोली, सूरज मेरे लिये फूल तोड़ने को तालाब में तैरा था, डूब गया है।

खबर फैली, लोग दौड़ पड़े, सूरज को निकाल लिया। उसकी

मुट्ठी में तब भी कमल बँधा हुआ था। पेट से पानी निकाला गया। मुँह फूँका गया। साँस चलने लगी।

(२)

कई साल बीत गए। परी अब दस साल की है। पुस्तकों के साथ नृत्य-गीत की भी शिक्षा उसे दी जाती है।

माता के संस्कार चापल्य की उस विद्युत में प्रवेश करने लगे हैं। उसकी माता एक समय कलकत्ते की सुंदरी वेश्या थी। अब राजा महेश्वरसिंह की रक्षिता है। यह कन्या राजा साहब के औरस से पैदा हुई है। इसका नाम है परिमलकुमारी। स्नेह से राजा साहब तथा उसकी मा परी कहते हैं।

परी की मा के नाम राजा साहब ने एक अलग जायदाद लिख दी है। बड़े-से अहाते के अंदर चारों ओर से जल से भरी खाई है, बीच में कोठी, शिव-मंदिर, बग़ीचा फुलवाड़ी, राजपथ आदि प्रासाद के अनुरूप और-और सब कुछ। परी की माता शान में रानी साहबा से बढ़कर रहती है। परी का खर्च कुँवर साहब से ज्यादा है।

सूरज ड्योढ़ी के जमादार शत्रुहनसिंह का लड़का है। शत्रुहनसिंह किसी तरह नौकरी से गुज़र करते हैं। ऐसी जगह जाकर नौकरी की है, जहाँ पास-पड़ोस का कोई आदमी नहीं। इसलिये एक प्रकार उनका जीवन अपने कर्तव्य और पुत्र-स्नेह में ही पार होता है। सूरज इस समय मिडिल क्लास का विद्यार्थी है। परी के स्नेह-लेश-रहित तेज़ स्वभाव के कारण

वह उससे नहीं मिलता। पुनः वह मिडिल क्लास में पढ़ता है, परी से वह ऊँचे दर्जे में, ज्यादा पढ़ा हुआ है, इसका विचार परी नहीं करती, जो काम उससे करवाती है। उसके कारण वह लाज से मुरझा जाता है। इसलिये नहीं जाता, प्रायः परी के निकलने के समय कोठी में नहीं रहता। उधर लोगों से आदर तथा सम्मान प्राप्त कर, परी के स्वभाव में, सम्मान्य राज-कुमारीवाला गुरु गहन भाव, इतनी ही उम्र में दूब की जड़ की तरह फैलने लगा। एक सूरज को छोड़कर और सब उसकी इज्जत करते हैं, उसकी आज्ञा मानते हैं, उसके नौकर हैं। सूरज परी का शासन नहीं मानता, ऐसा विचार उठते ही वह सूरज को बुलवाती है। पर सूरज उस समय या तो गढ़ के बाहर किसी सहाध्यायी मित्र के साथ पढ़ता होता है या स्कूल गया होता है या खेलने के लिये निकला होता है।

ठीक बारह बजे दोपहर को, सोचकर इतवार के दिन, परी नीचे उतरी। सूरज उस समय पिता के साथ भोजन कर रहा था। एक नौकर चुपचाप दौड़ाकर देख आने के लिये भेजा। लौटकर नौकर ने कहा "है, भोजन कर रहा है।"

"अभी ले आओ, न आए, तो कान पकड़कर ले आओ।" हुक्म हुआ। नौकर दौड़ा हुआ गया, और सूरज के बाप से कहा कि राजा बहुत जल्द सूरज को बुलाती हैं, भेज दो, नहीं तो दिखाने के लिये कान पकड़कर ले जाना होगा।

सूरज का बाप आँसू पीकर रह गया। सँभलकर कहा—"लड़के को फ़िज़ूल परेशान करती हैं. क्या काम है?"

"कुछ नहीं।" नौकर ने कहा—"गेंद धूप में फेक दिया है, और हठ है कि सूरज आकर उठाकर दे।"

सूरज ने कहा—"बाबू, मुझे इस तरह गेंद उठाकर देते हुए लाज लगती है।"

ठाकुर शत्रुहनसिंह की आँखों से आग निकलने लगी। कहा—"हम नौकर हैं, हमारा लड़का नौकर नहीं, और हम भी गेंद उठाने की नौकरी नहीं करते. तलवार बाँधने की करते हैं, जाओ, राजा की मा से कह दो।"

नौकर परी के पास लौट आया। कहा—"सूरज न आवेगा, शत्रुहनसिंह बिगड़ रहा है।" परी की आँखें लाल हो गईं, पर शत्रुहनसिंह वहाँ के सिपाहियों का अफ़सर था, वह भी कुछ डरती थी, इसलिये मा के पास नालिश करने चली। इधर से नौकर भी चला।

परी और नौकर की बातें सुनकर, पूजा समाप्त करके आई हुई पहले कामलता दासी, अब श्रीमती रानी कामलतादेवी, तिनककर द्रुत-पद राजा साहब के कमरे में गईं (राजा साहब का स्थायी निवास उन्हीं की कोठी में रहता था), और आँखों की पुतलियों को भौंहों के पास तक चढ़ाकर, एक झटका गर्दन का देती हुई बोली—"ऊँहूँ, यह तो न होगा; सुना, तुम्हारी परी कभी-कभी सुरजुआ को बुलाकर खेलती है, इससे उनके

पिताजी की महान् मर्यादा जाती रहती है, क्योंकि उनके पुत्र अब दफ़्तर के बाबू की जगह लेनेवाले हैं, मैं पूछती हूँ, ऐसे आदमी को रखने से फ़ायदा ?"

"फ़ायदा क्या है ? उसको निकाल दो।" राजा साहब ने आज्ञा दी।

रानी कामलतादेवी ने कहा—"परी के सामने पिता और पुत्र दोनो के कान पकड़कर गढ़ से बाहर कर दो।"

पुरस्कार की लालसा से दो सिपाही शत्रुहनसिंह के मकान की तरफ़ दौड़े. परी हँसती हुई वहीं से देख रही थी। दोनो जैसे-के-वैसे ही लौटते हुए देख पड़े। परी को साथ लेकर रानी कामलतादेवी के पास जाकर कहा, वे लोग पहले ही से फाटक के बाहर निकल गए, और सरकारी थाने में जाकर बैठे हैं। हरगोविंद से शत्रुहन कह गए हैं कि थानेदार को साथ लेकर कल चारज समझा जायँगे।

(३)

सात वर्ष और पार हो गए। परी अब सत्रह साल की परी हो गई है। राजा महेश्वरसिंह इस समय राजा और तअल्लुक़ेदारों में बड़े ज़ोरों से समाज-सुधार कर रहे हैं। संवाद-पत्रों में इस कार्य के लिये कभी-कभी उनके दिए दान की तालिका प्रकाशित होती है, और जिस सभा में समाज की बुराइयों पर उनका भाषण होता है, लोग तालियाँ पीटकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। देश के राजा-रईसों के बिगड़ैल,

समाज-सुधार के शंख-स्वरूप, रूप के अंधे, कुँवर लोगों ने एक वाक्य से राजा महेश्वरसिंह का समाज-प्रेम स्वीकृत कर लिया है, प्रायः उनकी कलकत्तेवाली कोठी में एकत्र होते हैं, और परी के रूप में जलकर, सहानुभूति की राख उसके पिता की आँखों में झोंककर चले जाते हैं। राजा महेश्वरसिंह की इतनी उदारता, दान-मान और समाज-सुधार का फल यह न हुआ कि किसी कुँवर से वह परी का विवाह कर पाते। अधिकांश कुँवरों के पिता जीवित थे। पिता की मृत्यु न होने तक विवाह के लिये कुँवर लोग अपनी सम्मति नहीं दे सकते, राजा महेश्वरसिंहजी को बातचीत पड़ने पर समझा देते थे। दो साल से राजा महेश्वरसिंह भी उनमें से किसी के पिता के मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर परी के दुर्भाग्य से अभी तक सब जी रहे हैं—रावनगर, धनपुर, कटहर, बिड़ाली, पाटन, बहेड़ा, मुजइल, गजखान, कुम्हड़ौरा, तिरपट, सकोटा आदि-आदि की नवीन गद्दी आबाद नहीं हुई। कुछ दिनों से उन्हें महाराज प्रतापनारायणसिंह, चंदपुर, से आशा हो रही है। रानी कामलतादेवी की भी इच्छा है कि परी का विवाह यहीं हो। राजा साहब को भरोसा इस-लिये है कि महाराज, चंदपुर को बंगाली सभ्यता बहुत पसंद है। समाज-सुधारक के नाम से प्रसिद्ध राजा महेश्वरसिंह से जब वह पहलेपहल कलकत्ते के ग्रैंड-होटल में मिले थे, तब बंगाल की सभ्यता की बड़ी तारीफ़ की थी, और उनके समाज-

सुधार के लिये सहानुभूति दिखलाई थी। इसके बाद रानी कामलतादेवी तथा कुमारी परिमल को साथ लेकर कई बार राजा महेश्वरसिंह उनसे मिल चुके हैं। माता के साथ परी भी सहमत है। कारण, वहाँ ऐश्वर्य और सम्मान अधिक है।

आज महाराजा साहब के सेक्रेटरी मिस्टर रैटलर साहब फिर राजा महेश्वरसिंहजी को निमंत्रण देने आए हैं कि रात नौ बजे कृपा कर राजा साहब सपरिवार महाराजा साहब की कोठी में दर्शन दें।

सपरिवार राजा साहब महाराजा साहब के साथ भोजन कर रहे थे। और कोई न था। भोजन में राजाओं के साथ सम्मिलित हो भी नहीं सकता था। राजा साहब ने महाराजा साहब को ग़ौर से परी की ओर देखते हुए देखकर आशा से पुलकित होकर कहा, महाराज अगर एक संबंध बंगाल में भी करें, तो अच्छा हो, प्रांतीय सौहार्द इस प्रकार बढ़ता रहे।

"मेरी इच्छा तो है", महाराजा साहब ने परी को देखते हुए कहा। रानी कामलतादेवी ने मुस्किराकर कहा—"आप मेरी परी से विवाह कीजिए।" बड़ी सभ्यता से महाराजा साहब ने कहा—"आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

दिन ठीक करने को एकांत में महाराजा ने आज्ञा दे दी। लौटकर राजा महेश्वरसिंह ने रानी कामलतादेवी से कहा—"पहाड़ी हूस है, परी को देखकर पागल हो गया है, हमें तो अपना मतलब गाँठना है।"

(४)

विवाह से पहले महाराजा साहब ने कहला भेजा कि आप तो समाज-सुधारक हैं, विवाह में व्यर्थ खर्च क्यों किया जाय, वही रक़म जिस सार्वजनिक संस्था को आप कहें, दे दी जाय। प्रस्ताव राजा को भी पसंद आया। फिर पंडित लोग महाराजा साहब की तरफ़ के, जो एक पग इधर-से-उधर होनेवाले न थे, कहा, हमारे महाराज का विवाह तो उसी ढंग से होगा, जो रीति हमारे यहाँ प्रचलित है। उदार राजा महेश्वरसिंह ने यह भी मंज़ूर कर लिया।

विवाह का दिन जहाँ तक शीघ्र किया जा सका, स्थिर किया गया। राजा साहब को महाराजा साहब के यहाँ की सभी प्रथाएँ मंज़ूर करनी पड़ीं। इसलिये विवाह के दिन राजा साहब को अपने कुछ आदमी, रानी कामलतादेवी तथा परी के साथ महाराजा साहब के ही मकान जाना पड़ा। राजा साहब अपनी तरफ़ से कोई ब्राह्मण पंडित नहीं ले गए थे, उन्हें ब्राह्मणों के मंत्रों पर विश्वास न था।

मंत्रोच्चार के समय ब्राह्मणों को 'दासी-ग्रहणम्, दासी-ग्रहणम्' कई बार कहते हुए सुनकर राजा साहब चौंके, पर संस्कृत अच्छी पढ़ी न थी, सोचा, यह भी कोई रीति ही यहाँ की होगी। इस विचार से चुप हो रहे। 'कन्या-दासी-समर्पणम्' से 'दासी-ग्रहणम्' सब पूरा हो गया।

प्रधान पंडित ने कहा—"राजा महेश्वरसिंहजी ने हमारे

महाराज को दासी-रूप से अपनी कन्या का समर्पण किया है।"

राजा साहब को शब्द बड़े बुरे लगे। पूछा—"दासी-रूप क्या है?"

प्रधान पंडित ने कहा—"आपने अपनी कन्या महाराज की सेवा के लिये दी।"

राजा साहब रुष्ट होकर बोले—"आप केवल दासी और सेवा का उल्लेख करते हैं।"

पंडित ने कहा—"महाराज के पूज्य पिताजी की ऐसी ही आज्ञा है; वह महाराज आ रहे हैं।"

राजा महेश्वरसिंह ने देखते ही पुकारा—"शत्रुहनसिंह !"

"चुप ! कान पकड़कर निकाल दिए जाओगे।" पास ही खड़े हुए महाराज के एक शरीर-रक्षक ने कहा।

"राजा महेश्वरसिंह", महाराज शत्रुहनसिंह ने कहा—"तुम्हारी जैसी लड़की है, हमने वैसा विवाह भी कराया। हम, अपने विपक्ष के सताए हुए, राज्य से भगकर तुम्हारे यहाँ दो रोटियों के लिये राज्य के हक़दार बच्चे को लेकर गए थे। समय बदला। लड़के को गद्दी मिली। तुम और तुम्हारी यह सात रोज़ तक हमारे जूते उठाओ, तो तुम्हारी लड़की को लड़की समझकर, क्षमा कर, लड़के के साथ एक आसन पर बैठने का अधिकार हम देंगे। क्षत्रिय होकर क्षत्रिय के साथ वैसा नीच बर्ताव तुम देखते रहे !"

हिरनी

(१)

कृष्णा की बाढ़ बह चुकी है ; सुतीक्ष्ण, रक्त-लिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल-जिह्व, योजनों तक क्रूर, भीषण मुख फैलाकर, प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु तांडव कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, क्षुधा-क्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल साक्षात् प्रेतों-से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधों में सेना-पति अकाल की पुनः-पुनः शंख-ध्वनि हो रही है। इसी समय सजीव शांति की प्रतिमा-सी एक निर्वास-बालिका शून्यमना दो शवों के बीच खड़ी हुई चिदंबर को देख पड़ी।

"ये तुम्हारे कौन हैं ?" शवों की ओर इंगित कर वहा की भाषा में चिदंबर ने पूछा।

बालिका आश्चर्य की तन्मय दृष्टि से शवों को कुछ देर देखती रहकर शून्य भाव से अज्ञात मनुष्य की ओर देखने लगी।

चिदंबर ने अपनी तरफ़ से पूछा—"ये तुम्हारे मा-बाप हैं ?"

बालिका की आँखें सजल हो आईं।

चिदंबर ने सस्नेह कहा—"बेटी, हमारे साथ डेरे चलो, तुमको अच्छा-अच्छा खाना देंगे।"

बालिका साथ हो ली। उसकी अंतरात्मा उसे समझा चुकी थी कि उसके माता-पिता उस नींद से न जगेंगे। उसे माता-पिता को सचेत करने का इतना उद्यम पहले कभी नहीं करना पड़ा,—यही उसके प्राणों में उनके सदा अचेत रहने का अटल विश्वास हुआ।

पहले चिदंबर ने अच्छी तरह उसे अपना दुपट्टा पहना दिया, फिर उँगली पकड़कर धीरे-धीरे डेरे की ओर चला, जो वहाँ से कुछ ही फ़ासले पर था। अकाल-पीड़ितों की समुचित सेवा के लिये मदरास के 'पतित-पावन संघ' के प्रधान निरीक्षक की हैसियत से संघ को साथ लेकर चिदंबर वहाँ गया था।

(२)

कुछ दिनों बाद धन-संग्रह के लिये चिदंबर को मदरास जाना पड़ा। शिक्षण-पोषण के लिये अनाथ-आश्रम में भर्ती कर देने के उद्देश से बालिका को भी साथ ले गया। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि राजा रामनाथसिंह रामेश्वरजी के दर्शन कर कुछ दिनों से ठहरे हुए हैं, उसे मिल आने के लिये बुलावा भेजा था। चिदंबर के पिता जज के पद से पेंशन लेकर कुछ दिनों तक राजा साहब के यहाँ दीवान रह चुके थे; उन दिनों चिदंबर को पिता के पास युक्तप्रांत में रहकर प्रयोग-विश्वविद्यालय में अध्ययन करना पड़ा था। अब उसके पिता नहीं हैं।

संवाद पा राजा साहब से मिलने के लिये चिदंबर उनके

वास-स्थल को गया। बाद की बातचीत में बालिका का प्रसंग भी आया। चिदंबर उसे अनाथ-आश्रम में परवरिश के लिये छोड़ रहा है, यह सुनकर कारुण्य-वश राजा साहब ने ही उसे अपने साथ सिंहपुर ले जाने के लिये कहा। चिदंबर इनकार करे, ऐसा कारण न था ; बालिका रानी साहिबा की देख-रेख में, उन्हीं के साथ, उनकी राजधानी गई।

(३)

आठ साल की लड़की रानी साहिबा की दासियों से स्नेह तथा निरादर प्राप्त करती हुई, उन्हीं में रहकर, उन्हीं के संस्कारों से ढलती हुई धीरे-धीरे परिणत हो चली। वहाँ जो धर्म दासियों का, जो भगवान् रानी से सेविकाओं तक के थे, वही उसके भी हो गए। झूठ अपराध लगने पर दासियों की तरह वह भी क़सम खाकर कहने लगी, "अगर मैंने ऐसा किया हो, तो सरकार, सीतला भवानी मेरी आँख ले लें।" वहाँ सभी हिंदी बोलती थीं, पर जो मधुरता उसके गले में थी, वह दूसरे में न थी ; जैसे हारमोनियम के तीसरे सप्तक पर बोलती हो। रानी साहिबा उससे प्रसन्न थीं। क्योंकि दूसरी दासियों से वह काम करने में तेज़ और सरल थी। उसका नाम हिरनी रक्खा था। वह जिस रोज़ रनवास में आई थी, तब से आज तक, उसी तरह, अरण्य की, दल से छुटी हुई, छोटी हरिणी-सी, एकाएक खड़ी होकर, सजग-दृग, पार्श्व-स्थिति का ज्ञान-सा प्राप्त करने लगती है कि वह कहाँ

आई, यहाँ कोई भय तो नहीं। दृष्टि के सूक्ष्मतम तार इस पृथ्वी के परिचय से नहीं, जैसे शून्य आकाश से बाँधे हुए हों; जैसे उसे पृथ्वी पर उतारकर विधाता ने एक भूल की हो। उसके इस भाव के दर्शन से 'हिरनी' नाम, कवि के शब्द की तरह, रानी के कंठ से आप निकल आया था।

वही हिरनी अब जीवन के रूपोज्ज्वल वसंत में कली की तरह मधु-सुरभि से भरकर चतुर्दिक् सूचना-सी दे रही है कि प्रकृति की दृष्टि में अमीर और ग़रीबवाला क्षुद्र भेद-भाव नहीं, वह सभी की आँखों को एक दिन यौवन की ज्योत्स्ना से स्निग्ध कर देती है; किरणों के जल से भरकर, जीवन में एक ही प्रकार की लहरें उठाती हुई, परिचय के प्रिय पथ पर बहा ले जाती है; जो सबसे बड़ी है, जिसके भीतर ही बड़े और छोटे की नाप में भ्रम है, वह स्वयं कभी छोटे और बड़े का निर्णय नहीं करती, उसकी दृष्टि में सभी बराबर हैं, क्योंकि सब उसी के हैं। उसी ने हिरनी में एक आशा, एक अज्ञात सुख की आकांक्षा भी भर दी, जिससे दृष्टि में मद, मद में नशा, नशे में संसार के विजय की निश्चल भावना मनुष्य को स्त्री के प्रणय के लिये खींचती रहती है।

इसी समय इँगलैंड से शिक्षा प्राप्त कर राजकुमार घर लौटे थे, और दो-तीन बार हिरनी को बुला चुके थे। रानी दूसरी दासियों से यह समाचार पाकर हिरनी का विवाह कर देने की सोचने लगीं। वहीं एक कहार रामगुलाम

रहता था। नौजवान था। रानी साहिबा ने उससे पुछवाया कि हिरनी से विवाह करने को वह राज़ी है या नहीं। वह बड़ा ख़ुश हुआ, उत्तर में अपनी ख़ुशी को दबाकर रानी साहिबा को ख़ुश करनेवाले शब्दों में कहा, "सरकार की जैसी मर्ज़ी हो, सरकार की हुकुम-अदूली मुझसे न होगी।"

विवाह में घरवालों की राय न थी। रामग़ुलाम बाग़ी हो गया।

एक दिन उसके साथ हिरनी का विवाह प्रासाद के आँगन में कर दिया गया। हिरनी पति के साथ रहने लगी। साल ही भर में एक लड़की की मा हो गई।

(४)

दो साल और पार हो गए। रानी साहिबा का स्नेह, हिरनी के कन्या-स्नेह के बढ़ने के साथ-साथ, उस पर से घटने लगा। जिन दासियों की पहले उसके सामने न चलती थी, वे ताक पर थीं कि मौक़ा मिले, तो बदला चुका लें।

एक दिन रानी साहिबा ताश खेल रही थीं। पक्ष और विपक्ष में उन्हीं की दासियाँ थीं। श्यामा उर्फ़ स्याही उन्हीं की तरफ़ थी। मौक़ा अच्छा समझकर बोली—"सरकार को हिरनी ने आज फिर धोका दिया; मैं गई थी, उसकी लड़की को जूड़ी-बुख़ार कहीं कुछ भी नहीं।"

लड़की की बीमारी के कारण हिरनी दो दिन की छुट्टी ले गई थी। रानी साहिबा पहले ही से नाराज़ थीं। अब

धुवाँ देती हुई लकड़ी को हवा लगी, वह जल उठी। रानी साहिबा ने उसी वक्त स्याही को एक नौकर से पकड़ लाने के लिये कहने को भेज दिया। स्याही पुलकित होकर बूटासिंह के पास गई। बूटासिंह से उसकी आशनाई थी। बोली, "सरकार कहती हैं, हिरनी का झोंटा पकड़कर ले आओ, अभी ले आओ, बहुत जल्द।"

बूटासिंह जब गया, तब हिरनी बालिका के लिये वैद्य की दी एक दवा अपने दूध में घोल रही थी। बूटासिंह को मतलब समझाने के लिये तो कहा नहीं गया था। उसने झोंटा पकड़कर खींचते हुए कहा, "चल, सरकार बुलाती हैं।"

प्रार्थना की करुण चितवन से बूटासिंह को देखती हुई हिरनी बोली—"कुछ देर के लिये छोड़ दो, मयना को दवा पिला दूँ।"

घसीटता हुआ बूटासिंह बोला, "लौटकर दवा पिला चाहे जहर, सरकार ने इसी वक्त बुलाया है।"

स्याही साथ लेकर ऊपर गई। हिरनी रानी साहिबा की मुद्रा तथा क्रूर चितवन देखकर काँपने लगी।

रानी साहिबा ने हिरनी को पास पकड़ लाने के लिये स्याही से कहा, स्याही ने जोर से खींचा, पर हिरनी का हाथ छूट गया, जिससे वह गिर गई, हाथ मोच खाकर उतर गया।

रानी साहिबा क्रोध से काँपने लगीं। दूसरी दासियों को पकड़ लाने के लिये भेजा। इच्छा थी कि उसका सर दबाकर

स्वयं प्रहार करें। दासियाँ पकड़कर ले चलीं, तो रानी साहिबा को आँसुओं में देखती हुई, उसी अनिंद्य हिंदी में हिरनी क्षमा-प्रार्थना करती हुई बोली, "सरकार, मेरा कुछ कुसूर नहीं है।"

पर कौन सुनता है, उससे रानी साहिबा की सेवा में कसर रह गई है।

जब पास पहुँची, उसको झुकाकर मारने के लिये रानी साहिबा ने घूँसा बाँधा।

हिरनी के मुख से निकला—"हे रामजी!"

रानी साहिबा की नाक से ख़ून की धारा बह चली। वह वहीं मूर्च्छित हो गईं। हिरनी के बाल, मुख उसी ख़ून से रँग गए।

(५)

डॉक्टरों ने आकर कहा, ग़ुस्से से ख़ून सर पर चढ़ गया है।

तब से ज़रा भी ग़ुस्सा करने पर रानी साहिबा को यह बीमारी हो जाती है।